पगली

[भगवत्प्रेमके साथ-साथ धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक क्रान्तिपर कुछ व्यंगात्मक विचार]

लेखक—

वियोगी हरि

प्रकाशक—

हिन्दी-पुस्तक-एजेन्सी,

२०३, हरिसन रोड,

कलकत्ता।

पहला संस्करण } सं० १९८५ वि० { मूल्य १)
रेशमी जिल्द १।)

प्रकाशक—
बैजनाथ केडिया
प्रोप्राइटर—
हिन्दी पुस्तक-एजेन्सी
२०३, हरिसन रोड,
कलकत्ता।

मुद्रक—
जगदीशनारायण तिवारी,
वणिक प्रेस

भेंट 

धार्मिक,

सामाजिक एवं राजनीतिक

क्रान्ति

तथा

प्रेममें

पागल

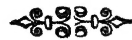
नवयुवकोंके

मज़बूत हाथोंमें—

श्री हरिः



पहला प्रलाप



मैं तो भाई, पगली हूं। सौ बार पगली हूं, हज़ार बार पगली हूं। मैं पगली, मेरी सात पीढ़ी पगली। अरे, उसीसे तो प्रीति जोड़ी थी! हां, उसी निठुर निर्दयसे। बड़ा झूठा है, बड़ा चालाक है, बड़ा कपटी है। दिन दहाड़े आँखोंमें धूल डालकर चम्पत हो गया।। उसी दिनसे लोग मुझे पगली कहने लगे हैं। उस दिनसे फिर वह मिला ही नहीं। तभीसे दीवानी बनी घूमती हूं उस प्यारेकी टोहमें। कहां-कहां उसे नहीं खोजा, कहां-कहां उसे गालियां नहीं सुनायीं! सुनो तो उसकी कुछ खोज-बीनकी कथा सुनाऊं। अच्छा, सुनो।

क्या सुनाऊं, क्या न सुनाऊं। लो, फिर उसकी सूरत सामने आ गयी। वही सूरत फिर आंखोंमें नाचने लगी। वही सूरत, जिसने आंखोंको गंगा-जमुना बना दिया है। वही सूरत, जिसने जिगरमें एक कसक पैदा कर दी है। वही सूरत, जिसने दिलमें एक तूफ़ान उठा दिया है। वही सूरत, जिसने मेरी दुनिया-को किसी प्रेम-समुद्रमें डुबो-दिया है। कैसे भुलाऊँ उस सूरतको! कैसे हटाऊँ उस चित्रको! जहां-तहां वही चित्र तो चित्रित देखती हूं। रातके सूरजमें और दिनके चांदमें वही तसवीर खिंची पाती हूँ। मरुभूमिकी लहरोंपर और समुद्रके रेतीले मैदानपर वही चित्र अङ्कित देख रही हूं। अहा! कैसा चित्र है! कैसी उसकी प्रतिच्छाया है! पर वह कहां? उस प्यारेका पता नहीं पाया।

अरे बाबा, उसे ढूंढ़ने गयी थी। तीर्थ-यात्रा भी इसी बहाने कर डाली। चारों धाम और सातों पुरियां छान चुकी हूं। जहां-तहां उसके नामका अलख जगाती फिरी। पर, वह चोर मिला नहीं। हैं! पहले तो तीर्थोंके पण्डे और पुजारी मुझ गरी-बनीको प्राण-प्यारे लुटेरेका सिंहासन ही नहीं छूने देते थे। कहते थे, यह चुड़ैल अछूत है। पर मैं क्यों मानने लगी उनकी यह धर्म-व्यवस्था! जैसे बना तैसे मन्दिरमें घुस ही गयी। सारे देवालय टटोल डाले। पर वह चोर न मिला। अरे, पुजारी और दर्शक तो देवालयोंकी बाहरी तड़क-भड़कमें ही मस्त थे। देव-

दासियोंके राग-रंगसे उन्हें अवकास ही कहां, जो मेरे खोये धनको ढूँढ़कर मुझे सौंप देते। मेरे रोनेपर वे सब लंठ-लफंगे हँसते और नाचने-कूदनेपर क्रोधसे नाक-भौं सिकोड़ते थे। सुना था कि काशीमें वह मुक्तिको आलिंगन दिये खड़ा है, और मथुराकी वीथियोंमें रंग-रेलियां कर रहा है। यह भी खबर पायी थी कि हज़रतने मक्केमें अपना रंग जमा रखा है, और जेरूसलममें भी अपना मोहन राग अलापा करते हैं। अब मुझसे पूछो। सच बोलूं या झूठ! कहोगे, पगली सच बोलना क्या जाने। अच्छी बात है। झूठ ही सही! तुम सत्यावतारोंसे मैं प्रमाण-पत्र लेने तो आई नहीं। हां, मुझे तो उस निठुरका दीदार कहीं नहीं मिला। हो सकता है, उसे देखनेकी मेरे पास वे आंखें न हों।

नहिं मन्दिरमें, नहिं पूजामें, नहिं घंटाकी घोरमें।
'हरीचन्द' वह बांध्यो डोलत एक प्रीतिकी डोरमें॥

प्रीतिकी डोर कहां पाऊँ! किस हाटसे वह रस्सी खरीद लाऊँ! यहां न पैसा न दाम—इतनी महंगी चीज़ कहांसे लाऊँ! अरे हां!

'हरीचन्द' वह बांध्यो डोलत एक प्रीतिकी डोरमें।

और सुनो। उस दाढ़ीजारकी पोथी चीर-फाड़ डाली तो कौन-सा अपराध हो गया। निगोड़ा मारने दौड़ा था। पाजी कथा-वाचक बनता है। मेरे प्रियतम हृदय-चन्द्रकी ओर तो प्रेमो-

न्मत्त हो देखता न था, घूंघटकी ओटमें हो तीर चलानेवाली उन मृग-नयनियोंकी आंखोंसे पापी आंखें लड़ा रहा था! उसका हृदय मरुभूमि था। वहां सरस प्रेम-लता कहां! पगलीने उसका अन्तरालय जा टटोला। कल्पित व्यास बाबाके हृदय-भवनमें कामिनी-काञ्चनको छोड़ और रखा ही क्या था। छिः छिः! हाथ मैला हो गया। मेरे प्राणेश्वरका पता बता देता, तो मैं उसकी चन्दन-चर्चित पोथीपर न जाने कितनी अशर्फियां चढ़ा देती। पर वह अन्धा पुराणोंकी सहस्रों आवृत्तियां करके भी जब उस हृदय-विहारीको न खोज सका, तो बोलो, मैं उसपर डाइनकी तरह क्यों न झपट पड़ूँ? मैंने तो सब श्रद्धालु श्रोताओंके देखते-ही-देखते उस पाखण्डीके सारे पत्रे-वत्रे चीर-फाड़कर फेंक दिये। अरे बापरे बाप,सारे बगुला भगत लगे पगलीपर पत्थर बरसाने। खूब उपल-वर्षा हुई। पर मैं भागी नहीं। पण्डितका शंख उठाकर ऐसे जोरसे फूँका कि रोचकता-प्रिय श्रोताओंके दिल दहल गये। विजय-गर्विता पगलीने अट्टहास किया। प्रलय-अट्टहास था वह प्रलय-अट्टहास! मालूम नहीं, मेरे अट्टहाससे कथा-वाचकका क्या हुआ।

नहिं भारत नहिं रामायनमें, नहिं मनुमें नहिं वेदमें।
नहिं झगरेमें नाहिं युक्तिमें, नाहिं मतनके भेदमें॥
अरे, हां—पियारो पैये केवल प्रेममें।

यही तो पागलपन है। अरे, प्यारे और प्रेममें अन्तर ही क्या है! क्या प्रेम साधन और प्रेम ही साध्य नहीं है! पगलीके शास्त्रमें प्रेम ही परा प्रकृति है और प्रेम ही परम पुरुष है। तीन लोकके तीरंदाज इसी एक निशानेपर टक बांधे देखे और सुने गये हैं। जिस किसीने यह लक्ष्य बेध लिया वह धन्य है, कृतार्थ है। कैसी दिल्लगी है! प्यारेके लिये प्रेमको खोजना पड़ेगा! मैं तो अब कुछ भी नहीं खोजती। जिसे खोजना हो मुझे ही खोज ले।

खैर, अब पगली-पुराण सुनो। उस दिन गयामें फल्गु-तटपर पचासों पनडुब्बे बेचारी मछलियोंका शिकार खेल रहे थे। गोल-मटोल सचिक्कण तोंदवन्त पण्डित-पुरोहित ही तो पनडुब्बे हैं। और मछलियोंसे मेरा अभिप्राय है पिंडपाणि सरल यजमानोंसे। सो, वहाँ 'तृप्यन्ताम्'की गगनभेदी गूँज, पितृ-पुत्रके बीचकी दलाली, निरक्षर भट्टाचार्योंका मन्त्र-दुर्दलन तथा काकावतार भोजन-भट्टोंका कांव-कांव देख-सुनकर, बाबा, मैं तो तालियां बजा-बजाकर हँसने लगी। जीवित माता-पिताकी तो कभी-बात भी न पूछनी चाहिए, उनकी तो खोपड़ी-भंजन लट्ठसे पूजा करनी चाहिए। हाँ, जब मर जायँ, तब उनके पास पिंड और तिलोदकका उपहार अवश्य भेज देना चाहिए। गयामें मुझे यही उपदेश मिला। पगलीको कहीं नास्तिक न मान बैठना। पगले तो नास्तिक होते

ही नहीं। तुम्हीं बताओ, वे दक्षिणा-लोलुप निरक्षर भोजन-भट्ट उन श्रद्धालुओंका पिंडोपहार क्या पितृलोक तक न भेज सकेंगे ? पर मेरी श्राद्ध-विधि कुछ और ही है। मेरे श्राद्ध-मयूखमें तो यह लिखा है, कि नेत्र बन्द करके एक क्षण अपने पूर्वजोंका ध्यान करो, और स्मृति-मंजूषामें रखी हुई उनकी म्लान्त सुकृत-माला-पर श्रद्धाके साथ दस-पांच अश्रु-बिन्दु छिड़क दो। जब उन्होंने मेरी श्राद्ध-विधिकी अवहेलना की, और लगे मुझे डांटने-दपटने, तब मैंने भी उन भीमकाय भोजन-भट्टोंकी आनितम्ब शिखाओंको पकड़- पकड़कर उन्हें ताक धिनाधिन नाच नचा दिया। फल्गु-मैयाकी जय हो ! बड़ा बढ़िया श्राद्ध हुआ। भोज्य पदार्थ रखे ही थे। लूले-लँगड़े, अन्धे-गूंगे, कोढ़ी-ओढ़ी आदि जितने घिनौने नराकार अस्थि-कंकाल वहाँ मिले, सबको एक पंक्तिमें बिठाकर भोजन करा दिया। ऐसे ब्रह्म-तुल्य सत्पात्र पगलीको अन्यत्र कहाँ मिलते ? पुरखे तर गये। उन्होंने अवश्य संतुष्ट हो मेरी यह श्राद्ध-लीला विमानोंपर चढ़े-चढ़े देखी होगी। तुम्हीं कहो कैसा श्राद्ध हुआ होगा।

चली थी उसे खोजने, बीचमें पड़ गयी कोरे कर्मठोंके चक्कर-में ! सन्ध्या-वन्दन देखा, अग्निहोत्र देखा, यज्ञ देखा और न जाने क्या-क्या देखा। सब देखा, पर उसे न देखा। वेदके मन्त्र सुने, कुरानकी आयतें सुनीं और इंजीलके भजन सुने, पर उस

मोहनकी मोहिनी मुरली आजतक न कहीं सुनायी दी। तुम्हारे कर्मकाण्डको लेकर कबतक चाटा करूँ। तुम सब मेरे प्यारेकी ओटमें शिकार खेलने आये हो। उस भोलेभाले मुखड़ेवालेके नामपर धर्म-कर्मकी विडम्बना करने चले हो! क्या कहना, बड़े खिलाड़ी हो!

सुनकर चौंक न पड़ना। धर्मका विषय है, धर्मका। नवरात्र-का शुभ अवसर था। दुर्गा-पूजाके समारोहमें मैं भी शामिल हो गयी। उसके विरहमें किसी तरह मन-बहलाव करना था। यही सही। हाँ, सो मैं उस चंडिका-मन्दिरमें बेरोक-टोक घुस गयी। भारी-भारी कृष्णकाय काल भैरव दुर्गा-पूजा कर रहे थे। उनके मस्तक रक्त चन्दनसे चर्चित थे। मन्दिर मद्य—मांससे सुवासित हो रहा था। चार-पाँच भैंसे और दस-बीस बकरे लाल फूलोंकी मालाएँ पहने खड़े थे। एक खड्गहस्त भक्त मन्त्र बड़बड़ा रहा था। मद्य-मांसके लिए शक्तिकी तो नहीं, पर शाक्तोंकी जिह्वाएं लपलपा रही थीं। पगलीसे यह सब न देखा गया। उस काले भूतके हाथसे मैंने खड्ग छीन लिया। ताण्डवनृत्य करती हुई मैं भक्तोंके पवित्र मस्तक उछालने लगी। चण्डी खिल खिलाकर हँस पड़ी। बचे-खुचे साधकोंने मुझे ही दुर्गा समझ लिया। बस फिर क्या, लगी होने पगली देवीकी षोड़शोपचार पूजा! भैया हो! कलियुगमें पगली ही प्रत्यक्ष काली है। देखो

तो, बेचारे निरपराध पशुओंका बलि देने चले थे वे धर्मान्ध लुच्चे !

बलिदान बुरा नहीं है। मैं भी बलि होनेको फिरती हूं। मेरा प्यारा चाहता है कि यह पगली अपने अहङ्कार-अजाको बलि कर दे। पर मुझे अभीतक बलि-शक्ति प्राप्त नहीं हो सकी। इसीलिये उस दिन मैं शक्ति तो बन गयी, पर शाक्त न बन सकी। शाक्त तो योगी ही होता है। वही एक अपने अहङ्कारका बलि दे सकता है। सचमुच वह निठुर इसी बलिका भूखा है। कोई सद्‌गुरु योगी मिल जाय तो वह मुझे क्षणमात्रमें शाक्त बना डाले। ऐसा योगी तो मेरा वही प्रियतम है। हा, वह कब मिलेगा !

जोगिया, तू कबरे मिलेगो आई।
तेरे कारन जोग लियो है, घर घर अलख जगाई॥
दिवस न भूख, रैन नहिं निद्रा, तुम बिनु कछु न सुहाई।
मीराके प्रभु गिरिधर नागर, मिलिकैं तपाते बुझाई॥

यों तो मुझे कई योगी मिले हैं, पर जैसा मैं चाहती हूं वैसा पागल योगी कोई न मिला। एक योगीकी कथा सुनो। वह बड़ा मायावी था। पूरा सिद्ध था। ऋद्धि-सिद्धि, नाटक-चेटक, आग-चूल्हा आदि सभी उसे सिद्ध था। क्यों जी, पतञ्जलि बाबा क्या यही सब नाटक-चेटक अपने योग-सूत्रोंमें लिख गये होंगे ? माना कि मैं पढ़ी-लिखी नहीं हूं, पर विवेक-मर्दिनी भी तो नहीं

हूं। लगा मुझे दाढ़ीजार अपने जोगकी करामातें दिखाने। अखंड समाधि साध कर भोलेभाले बच्चोंको बहकाता था। पचासों नवयुवक उसके चेले हो गये। अरे, वह पक्का-पोढ़ा धूर्त था। तुम्हें मालूम न होगा, मैं दिलके भीतरकी खबर लानेवाली हूं। उस पहुंचे हुए सिद्धके भीतर पैठ ही तो गई। हा हा हा हा हा हा हा !! सिद्ध बाबाकी ध्यान-पिटारीमें क्या-क्या अमोल रत्न मेरे हाथ आये ! कई बनी-ठनी चन्द्रमुखियां और ढेर-की-ढेर अशर्फियां ! काम, क्रोध, लोभ और मोहकाही उसके अन्तरालयमें अखण्ड साम्राज्य था। दुर्वासनाओंके दुर्गन्धके मारे मुझ घिनौनीकी भी नाक सड़ी जाती थी। घबड़ाकर बाहर निकल आयी। और सिद्ध बाबाको मैंने ऐसी लातें और ऐसे घूंसे जमाये कि कहीं तो गिरी टूट-टाट कर उसकी रुद्राक्ष-माला, और कहीं गया लुढ़कता हुआ पाजीका दण्ड-कमण्डल ! हा हा हा हा हा हा हा !!

अरे हां, तेरे कारन जोग लियो है,घर घर अलख जगाई।
जोगिया, तू कबरे मिलेगो आई।

न भूख है, न प्यास। नहीं नहीं, प्यास तो है और बड़ी तेज है। उस प्यासमे ही मैं छटपटा रही हूँ। पर उस प्याससे कंठ और ओठ नहीं सूखते, आंखें सूख रही हैं। हा !

आँखड़ियाँ झाईं परीं, पंथ निहारि-निहारि ।
जीभड़ियाँ छाले परे, पीउ पुकारि-पुकारि ॥

अब तो गला बैठ गया है। निर्दयको कहांतक पुकारूं, मेरे लिए बहरा बना बैठा है। मिल जाय तो फिर ऐसा छकाऊं कि हाँ! अरे, छकाऊँ तो क्या, अपने मर्मकी सब बातें सुना डालूं।

कैसेहुँ जो अपबस करि पाऊँ।
जीवन-धन, तौ तुम्हैं खोलि हिय, जियकौ मरम सुनाऊँ॥
या उर-अंतर प्रेम-कुटी रचि, पल-पांवड़े बिछाऊँ।
भाव-सेज सजि अति मृदु, तापै नाथ! तुम्हैं पौढ़ाऊँ॥
तहँ पलोटि पद-पदुम तुम्हारे, ललकि-ललकि बलि जाऊँ।
लाय-लाय सीतल रज नैननि, जियकी जरनि सिराऊँ॥
बूड़ि तुम्हारे स्याम-रंगमें, मानस पटहिं रँगाऊँ।
सहज पखारि पुरातन कारिख, पलमें धवल बनाऊँ॥
ललित त्रिभङ्गी गति नट-नागर! उमँगि-उमँगि उर ध्याऊँ।
कठिन कुटिल गति या चितकी प्रभु, कोमल सरल सधाऊँ॥
बँधिकैं तुम्हरी अलक-डोरिसों, हरि! भव-फंद छुड़ाऊँ।
लहि मुसुकान-माधुरी मोहन, षट-नवरसनि भुलाऊँ॥
सींचि-सींचि तुव कृपा-बारि नित, करम-कुखेत सुखाऊँ।
लाल, तुम्हारे चपल चखनि बिच रमि इत-उत नहिं धाऊँ॥

वेद-वाद ज्ञानादि बादि कै प्रेम-प्रथा प्रगटाऊँ।
'हरि' लै बीन लीन ह्वै तुव छबि, नित नव गुन-गन गाऊँ॥

उस कपटीको अपबस कर लेना ही तो कठिन है। किस अर्थका मेरा यह मनोराज्य! अरे, हाँ,

कैसेहुं जो अपबस करि पाऊँ।

गाना फिर सुनाऊँगी। अभी तो एक वेदान्तीकी कथा सुनाती हूँ। सुनो—एक दिन एक ज्ञानी कहो या विज्ञानी कहो, वेदान्ती कहो या द्वैत-अद्वैतवादी कहो, अथवा ईंट-पत्थर कुछ भी कहो—मुझे विश्वनाथबाबाकी पुरीमें मिला। बात-बातमें गर्दन उठा-उठाकर उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और गीताके प्रमाण दे रहा था। और सुन लो, कहता था, 'अहंब्रह्मास्मि' मैं ब्रह्म हूँ! निगोड़े का बाप भी कभी ईश्वर-परमेश्वर हुआ होगा! हैं, देखो—तुम्हीं बताओ, जिसे ब्रह्म-साक्षात्कार हो गया, वह संसारभरकी बकबास काहेको करता फिरेगा? ब्रह्म तो मन-वाणीसे परे है न? भैया, मैं ठहरी पगली। उस वेदान्तीपर ज्योंही मैं सहजस्वभावसे गालियोंकी पुष्प-वर्षा करने लगी, त्योंही हरामजादा अपने टकेसेर-वाले ब्रह्मवादको पोथियोंके बस्तेमें बंद करके मुझ पगलीपर बेतरह बिगड़ उठा। मैंने उसे एक गाली दी, तो उस ब्रह्मभूतने मुझे पचास गालियां दीं। मैं खिलखिलाकर हँस पड़ी। और मेरा आँय-बायँ-सायँ सुनकर वह ब्रह्मवादी भयभीत हो भाग गया।

भैया हो ! मैं भी ज्ञानवाद या वेदान्तका कुछ-कुछ मर्म समझने लगी हूँ। पगलीका अपना एक उपनिषद् भी है। उस निर्दय प्रियतमकी मतवाली आँखोंकी कसौटीपर अपने जीवनकाञ्चनको कसकर प्रेमका अन्तर्मर्म समझ लेना ही तो सच्चा ज्ञानवाद है। मेरे विरहोपनिषद्में तो बाबा, मानो या न मानो, यही लिखा है।

दर्शन-शास्त्रियोंकी लीला इस पगलीने खूब देखी है। ब्रह्म, जीव और प्रकृतिका इन बैठे-ठाले निठल्लोंने कुछ ऐसा बखेड़ा खड़ा कर रखा है कि सारे संसारकी शान्ति युगोंसे भङ्ग हो रही है। जितने भी यहां आये, सभी अपने-अपने नामको जोड़कर भ्रमकी एक-एक चिट्ठी छोड़ते चले गये। सच कहती हूं, यदि ये शब्द-जाली न होते, तो आज मानव-जीवनमें इतनी उलझन न बढ़ जाती। कहींका आस्तिक, कहींका नास्तिक ! निगोड़ों-के कितने भेद-प्रभेद बढ़ते चले जा रहे हैं। भला, उस 'अभेद'-का भेद समझनेमें भेद-प्रभेदकी आवश्यकता ही क्या ? शिव शिव ! शब्दोंका कैसा इन्द्रजाल फैला रखा है इन मायावियोंने ! अरे, वह ब्रह्म तो दीवाना है, और उसका रस पीनेवाले भी दीवाने हैं। प्रेमकी मस्तीका भेद ये भेदवादी क्या जानें ? ये दर्शन-शास्त्री मेरे प्यारेका दर्शन करा दें तो मैं उनको बदूं। हां, इन दर्शनोंसे कुछ मन-बहलाव ज़रूर हो जाता होगा। करें मन बह-लाव, पर उस मयका मज़ा कैसे चखेंगे !

पी प्रेम-पियाला भर-भर कर टुक इस मयका भी देख मज़ा ॥

ओ शास्त्रियो ! डाल दो अपने सारे दर्शनोंको मेरे प्रेम-प्यालेमें। क्यों, पियोगे दो-दो घूंट यह इश्ककी शराब ? मायावियो, इसे पीकर मुक्त हो जाओगे मुक्त। उस दिलदारसे भेंट हो जाना ही तो मुक्तिलाभ है।

दिलदारसों जौलौं न भेंट भई, तबलौं तरिबो का कहावतु है ?

दो घूँट पानी पी लूँ, फिर अपनी गाथा सुनाऊँ। तुम्हारा मन लगे या न लगे, मुझे तो पगली-पुराणका पारायण करना ही होगा। उन दिनों मैंने, स्मरण नहीं, किसके मुखसे धम्मपद सुना था। भगवान् बुद्धदेवपर तभीसे मेरी अगाध श्रद्धा है। दुःख-रहस्य और निर्वाण-रहस्यपर विचार करती हुई यह उद्भ्रान्त पगली आज भी तथागतकी पुण्य-स्मृतिपर श्रद्धाके चार आँसू चढ़ा दिया करती है। अहा !

बुद्धं शरणं गच्छामि,
धम्मं शरणं गच्छामि,
संघं शरणं गच्छामि।

कैसे पवित्र मंत्र हैं ! पर कहां है वह बुद्ध, कहाँ है वह धर्म्म, कहाँ है वह संघ ! आज तो कुछ भी नहीं है। आज न वे भिक्खु हैं, न वे विहार।

आजके बौद्ध उस त्यागि-श्रेष्ठ राजकुमारका त्याग भुला बैठे

हैं। 'दुःखतप्तानां प्राणिनामार्त्तिनाशनम्' का दिव्य उद्देश लेकर आज कौन निठल्ला, इस विज्ञान-युगमें, कठिन तपस्या करने बैठेगा ? अबके बौद्धोंमें तो मुझे कहीं भी वैसी निर्वाण-पिपासा नहीं देख पड़ी। अहिंसा, संयम और सदाचारके उस अद्वितीय आचार्यके निर्लज्ज अनुयायी आज खुल्लमखुल्ला मांस-भक्षण, मद्य-पान और प्रमदा-रमण कर रहे हैं। अब बौद्ध-जगत्में वह सेवाभाव नहीं रहा। भारतमें बेचारोंका नाम-निशान भी नहीं पाया जाता। सनातन-धर्मी इस बौद्ध-संहारको महाविजयका नाम देते हैं। पर पगलीकी रायमें वैदिक-धर्मका ह्रास उसी दिनसे होने लगा, जिस दिन शंकराचार्यने बौद्ध-संहारका बीड़ा उठाया। अरे, रहने दो, भूल जाओ उस पगले बुद्धको, उन-गरीब भिक्खुओंको, उन भग्ना-वशेष-विहारोंको। अरे, कौन मुझे हठात् रुला रहा है! बहुत चाहती हूं, पर हँस नहीं सकती। हा बुद्ध ! हा बुद्ध ! उसे कैसे भूलूं। बुद्धं शरणं गच्छामि।

अरे, बचा लो भैया, बचा लो। इन मत-मतान्तरोंके द्वेषानलमें तो मैं झुलसी जा रही हूं। यह कौन कह रहा है कि 'न गच्छेज्जैनमंदिरम्'! क्यों, भाई ! वेश्यालय, मद्यालय, मांसालय, इत्यादिमें जाना तो पुण्य है, और जैन-मंदिरमें जाना पाप ? नाश हो इन धर्म-विडम्बक पाखण्डियोंका। भगवान् ऋषभदेव और महावीर स्वामीके उपदेशामृतको ये ज्वराक्रान्त

धर्म-वादी कड़ुवा बतलाते हैं। अरे, जैन सिद्धान्त वैदिक धर्मसे क्या पृथक् है ? लो, तुम लोग तो उन्हें नास्तिक कहने लगे हो।

जैनको नास्तिक भाखै कौन ?
परम धरम जो दया अहिंसा, सोइ आचरत जौन ॥
सत्कर्मनको फल नित मानत, अति विवेकके भौन।
तिनके मतहिं विरुद्ध कहत जो, महामूढ़ है तौन ॥
सब पहुँचत एकहि थल, चाहौ करौ जौन पथ गौन।
इन आंखिन सों तौ सबही थल सूझत गोपी-रौन ॥
कौन ठाम जहँ प्यारो नाहीं, भूमि अनल जल पौन।
'हरीचन्द' ऐ मतवारे, तुम रहत न क्यों गहि मौन ॥

ये मदोन्मत्त मतवादी कहीं चुप रह सकते हैं ? इन्हें खण्डन-मंडनसे फुरसत नहीं। ये तो राग-द्वेषमें मरते-मिटते आये हैं और उसीमें मरते-मिटते जायेंगे। खैर, पगलीको इनसे क्या मतलब ! पगलों-का न तो कोई खास मत-मज़हब होता है और न कोई खास जात-पांत। उनकी दृष्टिमें हिन्दू—मुसलमान, ईसाई-यहूदी, पंडित-पादरी, मंदिर-मसजिद, या गिरजा सभी एक हैं। अरे बाबा ! मेरे प्यारेके साथ प्रीति जोड़नेके ही तो ये सारे जुदे-जुदे रास्ते हैं। सचमुच मेरा साईं बहुरूपिया है। कभी हिन्दू बनकर दीदार दे जाता है तो कभी मुसल्मान बनकर। कभी बौद्धके रूपमें दर्शन दे जाता है तो कभी जैनके रूपमें। किसीको उसकी झलक यहूदीके रूपमें

मिली है, तो किसीको ईसाई या पारसीके रूपमें। दुनियाको मेष बदल-बदलकर धोखा दे रहा है। पर दूसरोंको धोखा देनेवाले ही उससे धोखा खाते हैं। मत-मतान्तरोंके चक्करमें पड़नेवाले ही उस ठगसे ठगे जाते हैं।

हां, अच्छी याद आ गयी। एक दिन मैं उछलती-कूदती एक आलीशान मसजिदमें जा खड़ी हुई। जुमाका दिन था। सैकड़ों मुसलमान इस्लामके ठेकेदार मुल्लाओंके साथ नमाज़ पढ़ रहे थे। उस दिन मैं मंसूर,शमश तबरेज,मौलाना रूम और उमर ख़य्याम-की अलबेली मस्तियोंमें मस्त हो झूम रही थी। पर वहां किसी खुदापरस्त मुसलमानकी आँखमें इश्क़की खुमारी छाई नहीं देख पड़ी। अरे,उस खुमारीके लिये कसकीली आंख चाहिए,कसकीली! वह आंख ही कुछ और होती है। खैर, पगलीसे जब नमाज़ और इबादतका वह मखौल न देखा गया, तब उसने अपनी खंजड़ीके तालमें—'चढ़ा मंसूर सूलीपर पुकारा इश्क़बाजोंको'—यह गजल झुम-झूमकर गानी शुरू कर दी। अरे, ग़ज़ब हो गया! खुदाके इकलौते कृपापात्र मुल्ले मजहबी तअस्सुबमें आकर आपेसे बाहर हो गये। कहांकी नमाज़ और कहांकी इबादत! सब छोड़छाड़कर लगे मुझे बाजारके भाव पीटने। निगोड़े कहते थे, मसजिदके अन्दर खंजड़ी बजाने आयी है चुडैल, काफ़िरकी नानी, ही ही ही ही ही ही!! बाजे बजानेसे भी कहीं कुफ्र पैदा होता है, प्यारे?

हज़रत मुहम्मद तो, सुना है, मैदानेजङ्गपर घोड़े की पीठपर नमाज़ पढ़ लिया करते थे। उनके दिलपर तो कभी किसी बाजेकी आवाज़से ठेस नहीं पहुँची। पर, इन खूनी कट्टरोंके बीचमें मेरी बात कौन सुनता! सच्चा मुसलमान होना मुश्किल है। सच्चा मुसलमान देखो, क्या कहता है:——

मेरी मिल्लत है मुहब्बत, मेरा मज़हब इश्क है।
ख़ाह हूँ मैं क़ाफ़िरोंमें, ख़ाह दींदारोंमें हूँ॥

मसजिदमें उसे ढूंढ़नेको ही मैं गई थी। पर वह दिलवर वहाँ भी न मिला। झूठे पाखण्डियोंके घरोंमें उसका निवास कहाँ?

कबिरा दोनों राह न पाई।
हिंदुनकी हिंदुआई देखी, तुरकनकी तुरकाई॥

अरे, हँसते क्यों हो? सच तो कहती हूँ। मेरी समझमें तो दोनों ही गुमराह हैं। ईश्वर और धर्मके नामपर एक गाय काटता है, तो दूसरा बकरा। घृणित पशु-हत्याको एक कुरबानी कहता है, तो दूसरा बलिदान! हत्या दोनों ही हैं। चाहे नाग-नाथ कहो, चाहे सांप-नाथ। अरे, हिन्दू और मुसलमानमें भेद ही क्या है? एक ही बापके ये नादान बच्चे आपसमें कैसे लड़े मरते हैं। झूठे मंदिरों और झूठी मसजिदोंके पीछे हाय! मेरे साईंके कितने सच्चे मंदिर और सच्ची मसजिदें आयेदिन गिराई जाती हैं। डाढ़ी-चोटी, बाजा-मसजिद, पीपल-ताजिया या राम-रहीमके नामपर नित्य

ही सिरफुड़ौअल हुआ करता है। जिसके पालन करनेमें खून-खच्चर हो, उसे ही ये बेवकूफ हिन्दू और मुसलमान आज एकमात्र धर्म या मजहब समझ रहे हैं। शोक है, अहंकारका बलिदान या खुदीकी कुरबानी करनेको कोई माईका लाल आगे नहीं बढ़ता। मुझे क्या पड़ी है! लड़े जाओ मजहबी लड़ाइयां! इतना लड़ो कि लड़ते-लड़ते मर मिट जाओ। वेद और कुरानको खूनकी नदियोंमें बहा दो। मन्दिरों और मसजिदोंको स्वार्थकी आगसे जला डालो। पंडितों और मुल्लाओंके ही मत्थे धर्म-मजहबका ठेका मढ़कर रहना!

आज यदि इन अगणित मत-मतान्तरोंकी चींचीं-पोंपों दुनियामें न मची होती, तो लोग पेटमें दो रोटियां डालकर सुखकी नींद तो सोया करते। हाय-हाय! मेरे प्यारेका चांद-जैसा सुन्दर मुखड़ा इन्हीं काले बादलोंकी ओझलमें छिप गया है। बिना उस प्यारे चेहरेके धर्म या मजहब जिस्म रखता हुआ भी बेदिल और बेजान है। ऐसे मुर्दे धर्मपर लड़े मरते हैं ये पगले कुत्ते! खूनकी नदियां बहाते हैं ये नादान धर्मात्मा! बिना उस चांदके यह मजहबी काली रात मुझे खाये जाती है। न जाने, वह प्यारा चांद अब कब देखनेको मिले! कौन इस दीवानीका दर्द जानने आयगा? दुनिया तो तमाशबीन है।

हे री, मैं तौ प्रेम-दिवानी, मेरा दरद न जानै कोय।

अरे, जानकर कोई करेगा ही क्या। मुझे तो अपने मीठे दर्दमें ही मज़ा आ रहा है। मेरा जन्मही कसक-रस लेनेको हुआ है।

हे री, मैं तौ प्रेम-दिवानी, मेरा दरद न जानै कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी, केहि बिधि सोना होय।
गगन-मंडल पै सेज पियाकी, केहि बिधि मिलना होय॥
घायलकी गति घायल जानै, की जिन लाई होय।
जौहरिकी गति जौहरि जानै, की जिन जौहर होय॥
दरदकी मारी बन बन डोलूँ, बैद मिल्या नाहिं कोय।
'मीरा'की प्रभु पीर मिटैगी, जब बैद सँवलिया होय॥

भैया, सचमुच मैं इन मजहबोंसे तङ्ग आ गई हूँ। ईसाई-धर्मकी बात पूछते हो? अच्छा, सुनो। जरा सिर खुजला लूँ। थोड़ा पानी देना। अच्छा, फिर पिलाना, पहले सुन लो। महात्मा ईसापर किसकी भक्ति न होगी? सेवा-धर्मके तो वे अवतार थे। उनके गिरि-शिखरपरके दिव्य उपदेश किस गीतोक्तिसे कम पवित्र हैं? पर आज इञ्जीलकी स्वर्ण-शिक्षाओंको कितने ईसाई मनसा-वाचा-कर्मणा मानते हैं? प्यार करना दरकिनार, आज तो पड़ोसी के गलेपर छुरी चलाई जाती है। आज कौन पागल अपकारके बदले उपकार करेगा? महात्मा ईसाके अद्वितीय बलिदानका रहस्य आज कितने ईसाई समझते हैं? मसीहका पाकदामन पकड़कर आज कितने ईसाई सच्चे दिलसे दीन-दुर्बलोंकी निःस्वार्थ

सेवा कर रहे हैं ? परमपिताके उस दुलारे बेटेने तो अपने रक्तसे जगत्के पाप-संताप धोनेका प्रयत्न किया था, पर, हाय ! आज उसके निर्लज्ज अनुयायी अपने प्यारे भाइयोंके ही खूनसे अपने हाथ रंग रहे हैं ! इतना ही नहीं, ये ईसाई विश्वमैत्री और दुनियाभरके भाई-चारेका भी ढोंग रच रहे हैं ! शान्ति-स्थापनाके नामपर राष्टसंघकी रचना कर रहे हैं ! पगलीकी रायमें तो ईसाई पादरी प्रभु मसीहका दिव्य संदेश सुनानेकी ओटमें प्रायः शैतानी नीतिका ही संसारके कोने-कोनेमें प्रचार कर रहे हैं। मैं आज भी गिरजाघरोंमें जाती हूं। प्रार्थनामें भाग लेने नहीं, सिर्फ भारी-भारी घंटोंकी घनघनाहट सुननेके लिये ही मैं वहाँ पहुँच जाती हूँ। बात यह है कि हृदयहीन प्रार्थनाओंके आडम्बरसे घंटेकी आवाज़ कहीं ज़्यादा मीठी मालूम होती है। पगली होती हुई भी मैं संगीत-रसिका हू। उस हृदयविहारीकी बांसुरी सुन-सुनकर मैं संगीतपर मुग्ध हो गई हूँ।

उस बैरिन बांसुरीने ही तो मुझे पगली बना दिया है। मैं किस गिनतीमें हूं, उस निगोड़ीने न जाने किस-किसको दीवानी-फ़कीरनी नहीं बनाकर छोड़ा !

किती न गोकुल-कुलबधू, किहिं न काहि सिख दीन।
कौने तजी न कुल-गली, है मुरली-सुर-लीन॥

बाँसुरी भी क्या अजीब मोहिनी है ! उस विषकी बेल कहें

या अमृतकी धार। वह गाती भी है और रोती भी है। प्यारेके मुंह-से-मुंह लगाकर सदा प्रेममें डूबी रहती है। प्यारेके प्रेमका रस उसे चखनेको तभी मिला, जब उसने अपने तनको ख़ुदीसे ख़ाली कर दिया। इसीलिये पगली! तू भी—

दिलका हुजरा साफ़कर प्यारेके आनेके लिये।
ध्यान ग़ैरोंका हटा हस्ती मिटानेके लिये॥

बाँसुरीकी वह फूंक मुद्दतसे कानोंमें नहीं पड़ी। तबसे न जाने कितने बाजे न सुने होंगे,पर वैसा रस फिर कहीं नहीं बरसा। ओ वंशीवाले! तुमसे कौन कहने गया था कि बाँसुरी फूँककर मेरी यह हालत कर देना? मेरा पहलेका जीवन क्या बुरा था! कम-से-कम सिरपर यह इश्कका भूत तो सवार न था! दिलमें न कोई दर्द था, न कसक थी, और न आंखोंमें यह जहरीला नशा ही छाया था। ख़ैर, जो किया सो किया, अब अपनी झलक कब दिखाओगे प्यारे? वह मोहन मुरली कब फूंकोगे, मोहन?

होत रहै मन मों 'मतिराम', कहूं बन जाइ बड़ो तप कीजै॥
ह्वै बनमाल हियें लगिये, अरु ह्वै मुरली अधरा-रसु लीजै॥

फिर मनोराज्यमें विचरने लगी हूँ। इस जीवनमें यह सब होनेका नहीं। कहाँतक आशाका अंचल पकड़े रहूँ।

क्या कहती थी, क्या कहने लगी। हाँ, ईसाईधर्मकी बात कह रही थी न? कोई धर्म हो, सत्यको तो आज कोई भी आश्रय

नहीं दे रहा है। आज तो मिथ्याचारका बोलबाला है। भेदप्रभेदोंने तभी तो इन धर्मोंको क्षत-विक्षत कर डाला है। अरे! कुछ ठिकाना! कितने भेद-प्रभेद बढ़ गये हैं। हिन्दूधर्मके अन्दर शैव, वैष्णव, शाक्त, गाणपत्य, सौर, बौद्ध, जैन आदि पचासों सम्प्रदाय हैं। फिर इनके भी सैकड़ों भेद हैं। पंथी भी अनेक हैं—कबीर-पंथी, दादूपंथी, गोरखपंथी, नानकपंथी आदि। इन संप्रदायों और पंथोंने कैसी उलझनें डाल रखी हैं! उधर शिया, सुन्नी, अहमदिया आदि फिरकोंने इस्लामकी जड़ हिला डाली है। ईसाईधर्म भी खंडखंड कर डाला गया है। मेरे भोलेभाले साईंके दरबारमें पहुँचनेका सीधा-सादा लगनका दरवाज़ा बन्द करके इन शब्दजालियोंने कैसे-कैसे टेढ़े-मेढ़े, ऊँचे-नीचे, ऊबड़-खाबड़ रास्ते निकाल रखे हैं। फिर मज़ा यह कि सभी अभेदियोंने भेद मिटानेका स्वांग तो रचा, पर खुद भी एक-एक अपने नामका भेद पैदाकर मुस्कुराते हुए चले गये। अब बताओ, भूखा-प्यासा, थका-माँदा राहगीर वहाँतक किस राहसे पहुँचे! उस प्यारेका दर्शन उसे कैसे मिले!

अरे बाबा, भुक्खड़ भारतमें तो आज भी नये-नये संप्रदाय बनाये जा रहे हैं। मैं किसीको दोषी नहीं मानती। पगलीकी दृष्टिमें तो वे सभी धर्माचार्य ब्रह्माके अवतार हैं। राममोहनराय, दयानन्द, राधास्वामी आदि कुछ-न-कुछ करके ही गये

हैं। अपने-अपने स्थानपर सभी सुधारक, सभी उद्धारक और सभी पूजनीय हैं। सबको हाथ जोड़ती हूँ। धन्य है, उनकी खण्डन-मंडनात्मिका शक्ति! धन्य है उनकी धर्म-वीरता! पगलीकी बातका बुरा न मानना। उन सब महापुरुषोंने, ईश्वरके उन सब लाड़ले सुपूतोंने कम-से-कम साधारण जनताके साथ तो एक प्रकारसे अन्याय ही किया है। भूले-भटके राहगीरोंको और भी चक्करमें डाल दिया है। अरे, हाँ, सीधे-सादे अपढ़ और गँवार लोग उन पहुँचे हुए महात्माओंकी ताड़-जैसी ऊँची और समुद्र-जैसी गहरी बातें कैसे समझ सकेंगे!

धत् तेरी पगलीकी! कुछ ख्यालही नहीं रहता! तुझे इन मत-मतान्तरोंसे क्या मतलब है? झगड़ने दे उन सब झगड़ालुओं-को। झगड़-झगड़कर ही उनको मुक्ति मिलेगी। कर्कशा स्त्रियाँ कलह-साधनाएं साध-साधकर सीधे स्वर्ग सिधारेंगी। पशु-पक्षी भी आपसमें लड़-मरकर मुक्त हो जायँगे। तू उन कलह-प्रिय तर्कशास्त्रियोंको क्यों झगड़नेसे रोक रही है? अरे, सच है, बाबा! सच है!!

धरम सब अटक्यौ याही बीच।
अपुनी आपु प्रसंसा करनी, दूजेन कहनो नीच॥
यहै बात सबने सीखी है, का वैदिक का जैन।
अपनी-अपनी ओर खींचनो, एक लैन नाहिं दैन॥

आग्रह भर्‌यौ सबनके तनमें, तासों तत्व न पावैं।
'हरीचंद' उलटीकी पुलटी अपनी-अपनी गावैं॥

दूरसेही हाथ जोड़ती हूँ पंडितोंको, मुल्लाओंको और पादरियोंको; दूरसे ही नमस्कार करती हूँ उनके बड़े-बड़े भीमकाय ईश्वर-कृत ग्रन्थोंको!

मैंने तो उनके सारे वेद-शास्त्रों एवं अवस्ता-कुरान और इंजीलमेंसे सिर्फ ढाई अक्षरका एक महामंत्र चुन रखा है। उसी-की कसौटीपर मैं पण्डितों, शास्त्रियों, मुल्लाओं और पादरियोंको कसा करती हूँ। यह भी मेरा एक पाखण्ड है। खुद अपनेको तो उस कसौटीपर कसा नहीं, चली दूसरोंको कसने! सुनोगे, तो सुनाऊं वह मंत्र। अच्छा, लो सुनो:—

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय।
ढाई अक्षर प्रेमका पढ़ै सो पण्डित होय। *

बड़ी भूल हुई। क्यों यह हत्यारा मंत्र मुँहसे बाहर निकल पड़ा। इसी ढाई अक्षरी सत्यानाशी मंत्रने तो मेरी यह गत की है। करूँ क्या, राँड़ जीभ अपने बसकी नहीं। बहुत चाहती हूं कि चुप हो रहूं, पर कुछ-न-कुछ आयँ-बायँ-सायँ बकही आता है। यह मंत्र क्या है, मेरे मनकी व्यथाका बीज है। किसीको अपनी व्यथा सुनानेसे कुछ लाभ?

---

* कबीर

मनहीं रहिये गोय, 'रहिमन' निज मनकी बिथा।
बांटि न लैहैं कोय, सुनि इठलैहैं लोग सब॥

पर मौन भी कबतक साधे रहूँ। चुप रहनेकी भी तो कोई हद होती है! अब चुप रहना मेरे बसका नहीं। अब तो दिन-रात खूब बकती ही फिरूँगी। खूब बनाया! क्या कहना!

अब नाहिं प्रान रोके रहत।
रहत रोके प्रान नाहिं अब, विषम बेदन सहत॥
छटपटात अधीर छिन छिन, धीर नाहिंन गहत।
मनहुं पंछी पींजरा तें उड़न अबहीं चहत॥
रूप-दरस-पियास निसि-दिन, निबल नैननि दहत।
ध्यान पथतें हटत नाहिं वह, चैन चित नाहिं लहत॥
बिकल बिरह तरंगिनीमें, हाय! कबतें बहत।
गोय मनकी मनहिंमें 'हरि' बिथा नाहिंन कहत॥

सारे मत-मतान्तर बेचकर मैं तो अब बस एक प्रेम बिसाहना चाहती हूँ। पर ये धर्म-मज़हब तो प्रेमके मोलको न चुका सकेंगे। वह बड़ी महँगी चीज़ है। कहाँ ये तीन कौड़ीके तुम्हारे मज़हब और कहाँ वह प्यारेका प्रेम! कैसे मिले वह आबे इश्क़! इस मुर्दे दिलको जबतक उस प्रेम-रससे नहीं तर किया, तबतक खुदीकी आगमें जल-जलकर तड़पना पड़ेगा। धर्म-शास्त्रियोंकी मरुभूमिपर उस रसकी धारा कहीं बहती देखी

है ? वह आबे इश्क तुम्हारे मज़हबी रेगिस्तानपर लहराने नहीं जाता। बड़ी आफ़त है ! पगलीकी प्यास तो उसी रसकी प्याली-से बुझेगी। यह तुम्हारा खारा समुद्र मेरे किस कामका ! तो वह प्रेम-प्याली, बताओ, कहाँ मिलेगी। मैं उसीको चाहती हूँ। चाहनेसे क्या होता है ? क्या सिर्फ़ चाहने हीसे वह प्यारी प्याली मिल जायगी ? क्यों नहीं, वैसी चाह चाहिए। कैसी ? अरे, वही पपीहे-जैसी, अहा !

चातक 'तुलसी के मते' स्वातिहु पियै न पानि।
प्रेम-तृषा बाढ़ति भली, घटे घटैगी आनि॥
प्रीति पपीहा पयद की, प्रगट नई पहिचानि।
जाचक जगत कनाउड़ो, कियो कनौड़ो दानि॥
मान राखिबो मांगिबो, पियसों नित नव नेहु।
'तुलसी' तीनिउ तब फबैं, जौ चातक मत लेहु॥

छोड़ री पगली ! छोड़, इस चातक-चर्चाको। कहाँसे इस कसाई पपीहेका नाम याद आ गया ! मेरी तो कुछ विचित्र दशा हो रही है। प्रीतिकी बातें, भुलानेपर भी याद आही जाती हैं ! यह हत्यारी प्रीति पगलीका पिंड लेकर ही छोड़ेगी।

भैया, बहुत घूमी, बहुत फिरी, पर उस लापतेका पता न चला। मुझे तो इस मतलबी दुनियामें उस प्यारेके दीदारके लिये

शायद ही कोई बेवकूफ़ तड़पता हुआ मिला हो। दुनियादार और दीदारमें मुझे तो कोई फ़र्क नहीँ दिखाई दिया। ये दोनों ही नाम प्रियतमसे भेंट होनेके पहलेके हैँ। इस छोरसे उस छोरतक प्रायः सब नास्तिक-ही-नास्तिक मिले। बेचारे मुँह-फट चार्वाकका नाम तुम्हारे धर्म-धुरन्धरोंने योंही बदनाम कर रखा है। नास्तिक कौन नहीं है ? आस्तिककी भी क्या ही विचित्र परिभाषा मानी जा रही है ! कितने दग़ाबाज़, बेईमान, झूठे, दुराचारी, और नीच आज आस्तिक माने जा रहे हैँ ! अरे, वे लक्ष्मीके लाड़ले हैँ न ? अरे, वे किसी संप्रदायमें दीक्षित हो चुके हैं न ? बस, आस्तिकताके यही तो प्रमाण-पत्र हैँ। सच्चाई, ईमानदारी और सच्चरित्रताको पूछताही कौन है ? 'मैँ ईश्वरको मानता हूँ'—इतनाही कह देना आस्तिकके लिये काफ़ी है। सदाचारी अप्रत्यक्षरीतिसे भलेही आस्तिक हो, पर समाज उसे आस्तिक न मानेगा। समाज तो प्रत्यक्षरीतिसे घोषणा कर देनेवालेको ही आस्तिकका रूप देगा, भले ही वह दुराचारी हो। बेचारे चार्वाकने स्पष्ट शब्दोंमें ईश्वर-सत्ताका निषेध किया। बस, यही प्रमाण आस्तिक-समाजके सामने उसकी निन्दात्मक आलोचनाके लिये काफी है। अब पगली एक प्रश्न करती है। मेरे धर्म-प्राण महात्माओ ! तुम सब लोग अप्रत्यक्ष रीतिसे क्या नास्तिक नहीँ हो ? यदि सर्वान्तर्यामी ईश्वरकी विश्व-व्यापिनी सत्ताको तुम अन्तःकरणसे मानते होते,

तो आज तुम्हारे इस जीवनमें पाप-संतापका यह भयंकर समुद्र लहराता न दिखाई देता। ईश्वरके अस्तित्वके ज़बानी जमाखर्च-से कुछ फ़ायदा? इससे तो, पगलीकी रायमें खुल्लमखुल्ला अपनेको नास्तिक कह देना कहीं ज़्यादा अच्छा है। कम-से-कम सत्यकी व्यर्थ हत्या तो न होगी? बाबा! तुम दंभी आस्तिकोंको मैं दूरहीसे हाथ जोड़ती हूँ। आस्तिक बनने चले हैं हरामज़ादे! ग़रीब ईश्वर और धर्मकी ओटमें शिकार खेलने आये हैं मायावी! खुदापरस्त बनने चले हैं ये दगाबाज़ खुदीपरस्त! प्यारेकी प्यारी शकल देखनेकी तो छटपटाहट है नहीं, आस्तिकताका दावा करते हैं! कैसा अन्धेर है! कैसी मक्कारी है!!

मेरी समझमें तो कुछ यह आता है कि वह दिलवर 'अस्ति और नास्ति' इन दोनों ही बखेड़ोंसे परे है। अरे, वह तो

गोकुल गांवकौ पैंड़ोही न्यारो।

आस्तिकों और नास्तिकोंके युक्तिवादसे कहीं आजतक किसीने उस प्यारे चांदको देखा है? कहाँ युक्तिवाद और कहाँ वह प्रेमकी मस्ती!

युक्ति सों हरिसों का सम्बन्ध?
बिना बात ही तरक करैं क्यों चारहु दृग के अंध॥
युक्तिन कौ परमान कहा है, ये कबहूं बढ़ि जात।
जाकों बात फुरै सो जीतै, यामें कहा लखात॥

अगम अगोचर रूपहिं, मूरख ! युक्तिन में क्यों सानै ?
'हरीचन्द' कोउ सुनत न मेरी, करत जोइ मन मानै ॥

जो जिसके मनमें आवे खुशीसे करे—मैं क्यों बाधा दूँ । कमाये खाये जाओ ईश्वर और धर्मके नामपर। मन्त्र-तंत्र, जादू-टोना, भूत-प्रेत आदि सभी आस्तिकतामें शामिल किये जाओ ! खूब पैसे कमाओ, खूब नाम कमाओ ! ठगी ही सब धर्मोंका सार है। विश्वास है, तुम्हारा सिक्का सभी जगह चल जायगा ! आस्तिकताका पट्टा बाँधकर जहाँ चाहो तहाँ चले जाओ, कोई रोक-टोक नहीं ! हाँ, सिर्फ उस प्रेम-पुरीके भीतर प्रवेश न कर सकोगे। सो, वहाँ तुम्हे क्या करने जाना। वहाँ तो कोई बेवकूफ़ दीवाना जाता है, तुम-जैसे चतुर और धर्मात्मा नहीं । और, वहाँ तो नहीं, पर यहाँ तुम प्रेमका भी स्वाँग रच लोगे। खूब शृंगार वर्णन करना ! शृंगार ही तो प्रेम है ! जगत्पिता और जगन्माताका भी रति-वर्णन निर्लज्जभावसे किये जाना, प्रेम-साधना सिद्ध हो जायगी ! सारांश यह कि तुम दो-चारही नायिका-भेदके ग्रन्थ पढ़-सुनकर एक ऊँचे-प्रेमी बन जाओगे। बस, और क्या चाहिए ! अरे अन्धो ! उस प्रियतमका मिलन-रहस्य समझ लेना शतरंज या चौसरका खेल नहीं है। वह दिलवर ऐसोंसे कभी नहीं मिलता, जो दीन और दुनियाके बन्धन तोड़-ताड़कर उसके हाथमें अपना मन-मानिक सौंप देनेमें

हिचकते हैं। वह तो उन्हींको अपने रसमें सराबोर करने जाता है, जो अपनेको नयकी तरह खुदीसे खाली कर बैठते हैं। इससे, भैया, अपना भला चाहो तो प्रेमीका स्वांग न बनाना। प्रेम नकल करनेकी चीज़ नहीं है। उसकी साधना बड़ी कठिन है। वह तो कोई वस्तु ही और है।

पंथ प्रेम कौ अटपटो, कोइ न जानत बीर।
कै मन जानत आपुनो, कै लागी जेहि पीर॥

वह तो भावका भूखा या प्रेमका गाहक है। वह हर कहीं, हर जाति या हर धर्मवालेको अपना दिल देनेको तयार रहता है। पर झूठे और दग़ाबाज़को, चाहे वह किसी भी देश, किसी भी जाति या किसी भी धर्मका क्यों न हो, वह हरगिज़-हरगिज़ मिलनेका नहीं। अरे, इन्हीं पाखंडियोंके कचरेमें तो मेरा अनमोल हीरा खो गया है—

मेरा हीरा हिराय गा कचरे में।
कोइ पूरब कोइ पच्छिम ढूंढ़ै, कोइ पानी कोइ पथरे में।
मेरा हीरा हिराय गा कचरे में॥

इस कूड़े-कचरेमेंसे कैसे अपना हीरा खोज निकालूँ? काशी, मक्का, जेरूसलम आदि सभी स्थानोंपर मूँड़ मार चुकी, पर कहीं भी उसका पता न चला। इसलिये मुझे तो यही ठीक जँचता है कि—

जा पड़े यादमें उस शोख़ की जिस बस्ती में ।
वही गोकुल है हमें और वही बृन्दावन ॥

अब कहीं न जाना न आना । उसे मिलना होगा तो यहीं आकर मेरी आँखोंमें अपनी मस्ती भर देगा । जबतक उस निष्ठुरने अपनी लगनकी-चिनगारी मेरे दिलपर नहीं डाली, तबतक मेरी वासनाओंका यह गीला ईंधन गीलाही रहेगा । कामाग्निसे कहीं वह जल सकता है ? उससे तो वह और भी गीला होता जायगा । ये मुई वासनाएँ ही तो उस लापतेको और भी लापता बनाकर मुझे इधर-उधर भटका रही हैं । वह चिनगारी फिर इस दिलपर कैसे पड़े ! सच्चे विरह-रँगीले ही उस लगन-चिनगारीके अधिकारी हैं । यहाँ वह विरह-रंग कहाँ ? विरह-रँगीली होलीके खिलाड़ी ही उसकी झलक-झाँकी देखते हैं । कैसी होती होगी वह होली ! अहा !

फाग खेलन कहँ जाऊं,
घर ही में मेरो खिलारी बसत है ॥
तन तंबूरा सुरत सारंगी, मन ही मन मंजीर बजत है ।
गरद गुलाल लाल-चरननकी, नैनन सों रंग प्रेम झरत है ॥
मेरे खिलारी सों सब जग खेलै,कोइ रहीम कोइ राम कहत है
'दास'चहै कोइ जित-तित डोलै मेरो मन मो पियसों मिलत है

यह खूब होली हुई । सावन-भादोंमें होली गा रही हूँ ! फिर

भी मेरे पगली होनेमें तुम्हें सन्देह है ? क्या कह रही थी ? हाँ, विरह-रसकी बात चल रही थी । विरह-नीर ही मेरी प्रीति-बेलिको लहलही करेगा । झुलसकर सूख गयी है न ! उसे अब उसी नीरसे सींचूँगी ।

ईश्वर करे, यह सारी दुनिया प्रीति-बेलिमें उलझ-पुलझकर अपनी हस्ती मिटा दे । वेद-शास्त्र, क़ुरान-बाइबिल, अवतार-पैग़म्बर आदिकी पेचीदा उलझनोंसे तो प्रीति-बेलिकी उलझन फिर भी ज़्यादा सीधी और सुलझी हुई है । मुबारक हो यह इश्ककी उलझन !

अपनी टेकही तो है ! एक-न-एक टेक तो सभी पकड़े चले आ रहे हैं । मैं उस संगदिलसे मिलनेकी टेक पकड़े हूँ ।

कोइ काहू में मगन, कोइ काहू में मगन ।
मैं तो वाही में मगन, जासों लागी है लगन ॥

जिसका जी जिसमें लग जाता है, वह उसे मिलता भी अवश्य है । सोने और सुहागेको देख लो । प्रेमकी आँचमें तपकर दोनों कैसे एकरूप हो जाते हैं ! तो क्या वह मेरी टेककी लाज न रखेगा ? कौन जाने, वह क्या करेगा !

सच मानो भैया, उस मस्तीका मज़ा मुझे प्रेम-प्याली ही दे सकेगी । कैसी होगी वह लाली !

लाली मेरे लालकी, जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन जो गई, मैं भी हो गई लाल॥ *

चूल्हेमें जाय तुम्हारा सोमरस और तुम्हारी सुधा। आगमें फेंक दो अपना आबेहयात। यह सब लेकर मैं क्या करूँगी? मुझे तो, बस, उसी प्रेम-वारुणीकी प्याली चाहिये। एक उसी प्यालीकी चाहमें तो दीन और दुनियाको दुतकार दिया है! प्रेम-वारुणी और भी कई पगलोंने पी है। नारद, शुकदेव, चैतन्य, कबीर, मीरा आदि सभी उस मदिरामें मत्त रहते थे। उमर खय्याम, शमस तबरेज और मौलाना रूम भी उस प्यारी प्यालो-को दिनरात ओठोंसे लगाये रहते थे। क्या कहना है उनकी मस्तोका! उसी मस्तीसे तो तुम्हारी सुधा निकली है और उसी मस्तीसे वह आबेहयातका चस्मा बह रहा है। अहा!

जेहि मद तेहि कहाँ संसारा।
की सो घूमि रह, की मतवारा॥
सो पै जान पियै जो कोई।
पी न अघाइ, जाइ परि सोई॥
जा कहँ होइ बार इक लाहा।
रहै न ओहि बिनु, ओही चाहा॥

* कबीर।

अरथ दरब सो देइ बहाई।
की सब जाहु, न जाइ पियाई॥
रातिहु दिवस रहै रस-भीजा।
लाभ न देख, न देखै छीजा॥ *

देखूं, कब पीनेको मिलती है वह प्रेम—प्याली! अच्छा, लो, अब जाओ। जाओ, जाओ, नहीं तो फिर पत्थरोंकी मार पड़ेगी। किसी दिन फिर इसी घाटपर मिलूंगी। पगलीका प्रलाप फिर कभी सुनना हो, तो यहीं आ जाना। लो, जाओ, भागो।

मेरा हीरा हिरायगा कचरेमें।
कोइ पूरब कोइ पच्छिम ढूँढ़ै,कोइ पानी कोइ पथरेमें।
मेरा हीरा हिरायगा कचरेमें॥

— —

* मलिक मुहम्मद जायसी।

दूसरा प्रलाप



क्या पूछते हो कि तेरे सामाजिक विचार क्या हैं, पगली ? हैं हैं! मेरे सामाजिक विचार पूछते हो ! क्या हैं, कुछ नहीं। मेरी तो सारी बातें ऊटपटाँग हैं। जो जब मनमें आया, वही बक गई। चंद रोज़के लिये इस हाटमें क्या बेचूं और क्या खरीदूँ ? किसे बुरा कहूँ, किसे भला ? कल प्रलय होना हो, सो आज हो जाय। खूब उथल-पुथल हो। सूरज और चांद टुकड़े-टुकड़े होकर पृथ्वीपर गिर पड़ें। लोकसे लोक टकरा जायँ। विप्लवकी बाढ़ आ जाय। क्रान्तिकी आग, राम करे, तुम्हारे धर्म, तुम्हारे समाज और तुम्हारे स्वार्थ-परमार्थको जलाकर खाक कर दे। नाको दम कर रखा है बेहूदोंने। मेरे सामाजिक विचार पूछते हो! तुम लोग तो एक पगलीकी भी गालियां नहीं सुन सकते। समाजमें क्रान्तिकारी भी कहे जाओ और ऊपर फूलोंकी वर्षा भी होती जाय ! खूब क्रान्ति करोगे! तनिकमें बुरा मान बैठते हो। मन-ही-मन क्यों मुसकरा रहे हो। खूब खिलखिला कर हँसो। मैं गाती हूँ, तुम हँसो। पगलीके मनमें तो आज यह गीत बस रहा है। लो, हँसते-हँसते सुनो—

है बहारे बाग़ दुनिया चन्द रोज़ ।
देख लो इसका तमाशा चंद रोज़ ॥
बाद मदफ़न क़ब्रके बोली कज़ा ।
'अब यहाँपर सोते रहना चन्द रोज़' ॥
फिर तुम कहाँ, औ मैं कहाँ ऐ दोस्तो !
साथ है मेरा तुम्हारा चंद रोज़ ॥
ऐ मुसाफ़िर ! कूचका सामान कर ।
इस ज़हाँमें है बसेरा चन्द रोज़ ॥
पूछा लुकमांसे, 'जिया तू कितने रोज़ ?'
दस्ते हसरत मलके बोला, 'चन्द रोज़' ॥
क्यों सताते हो दिले बेजुर्मको ?
ज़ालिमो, है यह ज़माना चन्द रोज़ ॥
याद कर तू ऐ नज़ीर, क़ब्रों के रोज़ ।
ज़िंदगीका है भरोसा चन्द रोज़ ॥

अगर वह प्यारा चाँद किसी तरह आंखोंमें आ गया, दिलमें समा गया, तो समझ लो, ज़िन्दगीके ये चन्द रोज़ बनाते बन गये। फिर वही चाँद ! बहुत भुलाती हूँ, पर भूलता ही नहीं। पर उसे क्यों भुलाऊँ, वह भूल जानेके लिये थोड़े ही है ! जो भुला देना चाहिए, वह तो भूलती नहीं। उसे भूल जानेकी बात करती हू! यही तो पागलपन है ! रोम-रोममें रमा हुआ मेरा राम कहीं भुलाया जा सकता है ?

उरझि रह्यौ मनमें तू, मेरो मन उरझावनवारो।
मेरी-तेरी या उरझनकों, को सुरझावनहारो॥

भाइयो, उसे खोजनेमें क्या मेरा साथ दोगे ? अरे, तुम भी पागल हो जाओ। इस चार दिनकी ज़िदगीमें और करोगे ही क्या! पागल हो जानेमें ही सार है। चलो, पगलोंकी एक टोली बना डालें। अरे, हाँ,

फिर तुम कहाँ, औ मैं कहाँ ऐ दोस्तो!
साथ है मेरा तुम्हारा चन्द रोज़।

तुमसे कोई पूछे कि किस जातिके हो, तो कहो कि पगली जातिके। क्यों यही जवाब दोगे न ? न दोगे; तुम्हें तो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य होनेकी ऐंठ है! तुम ठहरे वर्ण-व्यवस्थापक! और पगले ? वहाँ कहाँ जात-पांतका बखेड़ा। तुम्हारा मन तो आज समाजको खण्ड-खण्ड करनेमें लगा हुआ है। बड़े वीर हो यारो! सहस्रों जातियाँ-उपजातियाँ रच डालीं। गुण और कर्मको पछाड़ दिया। तुम्हारे समाजमें तो माताके गर्भसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रका अवतार हुआ करता है। जात-पांतकी छाप जन्मके साथ ही किसीके माथेपर तो किसीकी पीठपर लगी आती है। निरक्षर भट्टाचार्य भी ब्राह्मण ही रहेगा, शूद्र नहीं हो सकता। इसी तरह सत्यनिष्ठ और सदाचारी शूद्र कभी ब्राह्मण हो ही नहीं सकता। अन्त काल-

तक बेचारा चांडाल ही गिना जायगा। कैसा भव्य न्याय है! पगलीकी समझमें तो चतुर्वर्णकी परिभाषा कुछ ऐसी आती है—

'बोलो, क्या होना चाहते हो—ब्राह्मण? अच्छा, सबसे पहले मिथ्याचार सीख लो। असद्वादी और व्यर्थ द्वेषी बन जाओ। खूब दान-दक्षिणा लिये जाओ। अपनेको ब्रह्माकी चोटी मान लो। विद्याको मार भगाओ। विश्वभरमें छुवा-छूत फैला दो। आठ कनौजिये, नौ चूल्हेका डंका पीटते जाओ। छिपे-छिपे मद्य-मांसका भी सेवन करते जाओ। बस, इन्हीं दो-चार साधनाओंसे 'द्विज-श्रेष्ठ' हो जाओगे।

या क्षत्रिय बनना चाहते हो? अच्छा, वही सही। नित्य नियमपूर्वक मद्य-पान और मांस-भक्षण करो। बिना इस साधनाके बल और पराक्रम प्राप्त होना असंभव है। फिर वारां-गनाओंका पादार्चन करो। जबतक उन कुतियोंके पीछे न लगोगे, तबतक सिंह-सुपूत तुम हो ही नहीं सकते। छिप-छिपकर चिड़ियों और मछलियोंको भी मारा करना। बहादुरी और दिलेरीका तो अपनी ही जातिको एकमात्र ठेकेदार मान लेना, देखो, इसमें भूल न हो। हां, यह याद रहे कि तुम्हारी वीरता ग़रीब निहत्थोंको ही पीसनेके लिए हो। कहीं शक्तिशालियोंका मुक़ाबला न कर बैठना। उनका तो चरण-चुम्बन ही किया करना। 'क्षत्रिय-कुल-भूषण' होनेके यही तो सब उपाय हैं!

शायद तुम वैश्य बनना चाहते हो। अच्छा, उसका भी साधन सुनो। चमड़ी भले ही चली जाय, पर दमड़ी न जाने पाय। देशहितके लिए खबरदार! भूलकर भी कभी एक टका न देना। वाणिज्य और सत्यमें कभी मेल न होने देना। वह रोज़गार ही कैसा जो सचाईके साथ किया जाय! अस्थि-कंकालोंके रक्तसे पूंजीपतियोंको पुष्ट करना ही नक़द्नारा-यणके उपासकोंका परम धर्म है। बस, अर्थपिशाच वणिक्का यही पगली-पुराणमें लक्षण लिखा है।

और शूद्र! यह टेढ़ी खीर है। बोलो, द्विजातिके अनन्य सेवक बनोगे? उच्च वर्णोंकी पवित्र पादुकाओंसे दलित होना, कहो, पसंद करोगे? क्या हुआ जो गाढ़े समयपर तुम अपनी जानपर खेलकर धर्मकी रक्षा किया करते हो! शूद्रत्वका तुम्हें पुरस्कार भी तो अच्छा मिलेगा! वेद-मंत्र तुम्हारे कानमें यदि भाग्यसे पड़ गया तो वर्णव्यवस्थापक तुम्हारा खूब सम्मान करेंगे। तुम्हारे भाग्यवान् कर्ण-कुहरोंको शीशेका पीयूष-पान कराया जायगा। गले-गलाये शीशेका! ईश्वरकृत वेद–पाठ सुनकर और क्या पुरस्कार लोगे?

तुम तो विधातासे अंत्यज-कुलमें जन्म लेनेकी प्रार्थना करना। बड़े सुखसे रहोगे। न पाठशालाओंमें माथापच्ची करनी पड़ेगी, न मंदिरोंमें सौ-सौ दण्डवत् प्रणाम। ऊंचे ऊंचे वर्णोंके

कुएं पर पानी भरने भी न जाना पड़ेगा। सिर्फ़ उनकी नीच टहल कर देनी होगी। सो कुछ मुफ़्त नहीं, खानेको खासा जूठन मिलेगा। और कभी-कभी दो-चार जूतियां भी मिल जायंगी। फिर 'अछूत' नामसे भूषित भी किये जाओगे।

क्या कहा कि, 'गुण-कर्म-विभाग' से वर्ण-निर्माणका प्रमाण मिलता है? यह कबकी सड़ी-गली बात उखाड़ते हो! गुण-कर्म तो पगले मानते हैं, समझदार नहीं। न मानो तो धर्मव्यवस्थापकोंसे पूछ लो। क्यों, लेनी है व्यवस्था? कुछ टके भी पास हैं? जितना खर्च करोगे वे तुम्हें उतना ही लंबा चौड़ा व्यवस्था-पत्र लिख देंगे।

बोलो, भाई, क्या बनना चाहते हो? अच्छा, पागलोंकी जात-पांतमें मिलना चाहते हो? उनकी जात-पांतका क्या ठिकाना! वे सभी जातियोंमें हैं, और किसी जातिमें नहीं। एक पगलेने अपनी जातिका क्या खूब परिचय दिया है!

धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।
काहूकी बेटीसों बेटा न ब्याहब, काहूकी जाति बिगार न सोऊ।
'तुलसी' सरनाम गुलाम है रामको, जाकों रुचैसो कहै कछुओऊ।
माँगिकै खैबो, मसीतको सोइबो, लैबेको एक न दैबेको दोऊ॥

यह है पगलोंकी जात-पाँत। अच्छा, आओ प्यारे! हिल-मिलकर उसे खोजने चलें। अरे, हां—

फिर तुम कहाँ, औ मैं कहाँ ऐ दोस्तो !
साथ है मेरा - तुम्हारा चंद रोज़ !

इस चन्द रोज़के साथमें और करेंगे ही क्या ! जिसे जो करना हो खुशीसे करे। हम तो अपने प्यारेको ही इस चार दिनकी ज़िन्दगीमें खोजते फिरेंगे। अरे, क्यों छिपा-छिपा फिरता है निर्दय ! बाहर निकल क्यों नहीं आता ? छिपनेकी ही आदत पड़ गई है तो हम पगले भी तो तुझे छिपाकर ही अपनी आंखोंमें रखेंगे।

आओ प्यारे मोहना, झाँपि पलक तोहि लेउँ।
ना मैं देखौं औरकों, ना तोहि देखन देउँ॥

यह तो मनकी बात होगी न ? न जाने, तुम्हारे मनमें क्या है ! तुम्हारे मनकी थाह मिली ही किसे है। जीवन-धन, धन्य तुम्हारी मानसी लीला !

भैया हो ! पगलोंकी ही जात-पाँत मेरी समझमें कुछ-कुछ आती है। और तो सब पाखण्ड है ! अरे हां, यह सब पाखण्ड नहीं, तो क्या है ? हज़ारों उपजातियाँ क्या तुम्हारे समाजको आज खण्ड-खण्ड नहीं कर रही हैं ? इसपर भी एकता और प्रेम देखना चाहते हो ! क्यों, न तुम्हारी बुद्धिपर पत्थर पड़ें। राम करे, तुम्हारा सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो जाय ! तुम्हें मैं यही आशीर्वाद देती हूं कि तुम्हारा यह आजका समाज क्रान्तिकी आगमें

जलकर खाक हो जाय। इस सड़े-गले समाजने तुम्हारी आँखें आसमानपर चढ़ा दी हैं। लिये फिरते हो उन निर्जीव स्मृतियोंके दस पाँच टूटे-फूटे श्लोक! आत्म-घातियो! क्या ये श्लोक तुम्हारी आत्मोन्नतिसे भी बढ़कर हैं? किये जाओ जो करना हो! तुम्हारा सुधार कौन करेगा? अब तो प्रलय ही तुम्हारा एकमात्र सुधार है!

उस पगलेने सच कहा है कि—

काहूकी बेटीसों बेटा न ब्याहब,काहूकी जाति बिगार न सोऊ।

इस भ्रष्ट समाजमें आज विवाहके लिये स्थान ही कहां है? यह विवाह है? कहो, यह विवाह है? हा हा हा हा हा!! ओ पण्डितो! ओ पुरोहितो! आओ, विवाह करा दो। देखो, वह है आकाशमें शुक्र और वह है वृहस्पति। मिला डालो उन सब ग्रह-नक्षत्रोंको। भले ही यहाँ वर और कन्याका शील न मिले, उनके गुणोंमें भले ही पृथिवी-आकाशका अन्तर रहे या भले ही उनमेंसे एक व्यभिचारी, आजन्म रोगी और कुरूपवान् तथा दूसरा निरुद्यमी-नपुंसक, पर सुन्दर हो। तुम्हें इस सबसे क्या मतलब, तुम तो बस यह देख डालो कि मंगल, सूर्य, चन्द्र इत्यादि-में कोई खटपट तो नहीं है। जन्मकुण्डलियां मिल गईं, बस छुट्टी है! रोने-धोने दो उन अभागोंको जीवनभर; तुम्हें क्या पड़ी है! कुण्डलीमें वैधव्य-योग न चाहिये, प्रत्यक्ष भले ही वर

महोदय यम-महाराजके अतिथि बनने जा रहे हों। फूले फले जाओ ज्योतिषियो! कराते जाओ जन्मकुण्डलियोंके आधारपर सैकड़ों बेमेल वृद्ध-विवाह और हजारों बाल-विवाह। बढ़ाते जाओ विधवाओं और वेश्याओंकी दिन-दूनी और रात चौगुनी संख्या। तुम्हारी तो चाँदी-ही-चाँदी है।

वर और कन्याके तुम मा-बाप भी कम भले आदमी नहीं हो! तुम्हारी भलमनसाहतसे ही अबतक यह समाज पृथ्वीपर टिका हुआ है। सचमुच अपने बाल-बच्चोंके तुम बड़े हितैषी हो! धन्य है तुम्हारी दूरदर्शिता! धन्य है तुम्हारी हित-चिन्तना! तुम्हारा कर्त्तव्य तो बस वंशाकी श्रेष्ठता देखनेतक ही है। बिस्वे-बीघे मिला लिए, छुट्टी हुई! वंशका रक्त शुद्ध चाहिए, भले ही वर या उसके पिताका खून किसी गंदी बीमारीसे दूषित हो गया हो! तुम्हारे शास्त्रमें विवाहका अर्थ तो यही है न, कि जात-पाँत वाले तुम्हारे संबंधको दूधका धुला समझें, संसारमें तुम ऊंचे कहे जाओ और तुम्हारी वंश-मर्यादा गंगाकी धारा मानी जाय? बस इतना ही या कुछ और? उधर तुम्हारे विवाहित बाल-बच्चे भले ही जीवनभर असंतोषकी आगमें जला करें! भले ही बेमेल-विवाहसे असंतुष्ट होकर तुम्हारा प्यारा लल्लू वेश्या-गामी और तुम्हारी दुलारी मुन्नी व्यभिचारिणी हो जाय! कुछ भी हो, तुम्हारी मूंछ तो ऊंची रहेगी ही! असलमें अपने बाल-

बच्चोंका विवाह तुम लोग अपनी प्रतिष्ठा रखनेको करते हो, उनका सुख-संतोष बढ़ानेको नहीं। सो तुम्हारा यह संतति-स्नेह धन्य है! क्यों न तुम्हारी संतति तुम्हें श्रद्धाभक्तिकी दृष्टिसे देखे? संतति तो संतति ही है, तुम्हारा गुण-गान तो आज विदेशी भी कर रहे हैं, और करते रहेंगे। तुम्हारी करतूतें कोयलेकी तरह उजली और विष्ठाके समान पवित्र हैं। मेरा भी तुम्हें शतशः नमस्कार है!

अरे, क्या-क्या बक गई। छिः छिः! कुछ याद ही नहीं रहता।

'आये थे हरि-भजनको, ओटन लगे कपास।'

पगलोंकी मण्डली बनाने चली थी; बीचमें यह शादी-ब्याह आ कूदा। चलो भाई! उस 'दिनदूलह' को खोजने चलें। दूलह तो बस वही है। कैसी उसकी मोहिनी छटा है!

पांयनि नूपुर मंजु बजैं, कटि किंकिनिमें धुनिकी मधुराई।
सांवरे अंग लसै पट पीत, हिये हुलसै बनमाल सुहाई॥
माथे किरीट, बड़े दृग चंचल, मंद हँसी मुख चंद-जुन्हाई।
जै जग-मंदिर-दीपक सुन्दर श्रीब्रजदूलह 'देव' सहाई॥

ऐसा है वह दिनदूलह। उसे निरखते-निरखते कौन तृप्त होगा? चलो मेरे पागलो! उसे देखने चलें। हैं! उधर क्या देख रहे हो! अरे, उसी नवयुवककी बारात आ रही है,—जिसका मैंने कल

पत्थरोंसे स्वागत किया था। यह उसका चौथा व्याह है। बेचारेकी अभी अवस्था ही क्या है ! साठ वर्षका तो है ही। अभी अभी किशोरावस्थामें पैर रखा है। चार पुत्र और तीन पौत्र भी हज़रतको ईश्वरने दिये हैं। कहते हैं कि विवाह सन्तानोत्पादनके अर्थ ही किया जाता है। पर वह साठ सालका सुंदर नौजवान इस पुराने प्रमाणको नहीं मानता। पुत्र-पौत्रादि हो जानेपर भी व्याह करना चाहिए, उसका तो यही धार्मिक सिद्धान्त है। इसीलिये वह साठ सालका छोकरा बारह वर्षकी बुढ़ियाका पाणिग्रहण करने जा रहा है ! सुना है कि कल या परसों श्मशान-पुरीमें उसका एक और व्याह होगा। और वह बारह वर्षकी बुढ़िया फिर कितने ही रसिकोंकी रँगीली आँखोंसे आँखें लड़ाती फिरेगी। तारीफ़ तो उस वृद्धा-कन्याके माँ-बापकी है, जो, लोभ और स्वार्थको तिलाञ्जलि देकर, ऐसे साठिया नौजवानको अपना दामाद बना रहे हैं ! अहा ! क्या ही पवित्र परिणय है ! बोलो एक बार हिन्दू-समाजके कर्णधारोंकी जय !

अस्तु। मैं तो उसी दिनदूलहको देखने जा रही हूं, जिसकी दुलहिनने तीन लोकमें लूट मचा रखी है। अरे, हां,—

रमैयाकी दुलहिन लूटा बजार।
सुरपुर लूट नागपुर लूटा, तीन लोक मचि हाहाकार॥

पर जो उसके दूलहके हाथों लुट चुका है, उसे वह कैसे लूटेगी ? सो, चलो हम सब पगले उसीके द्वारपर लुटनेके लिए चलें। ऐसा अवसर फिर हाथ आनेका नहीं। चलो मेरे प्यारे !

फिर तुम कहाँ, औ मैं कहाँ, ऐ दोस्तो !
साथ है मेरा तुम्हारा चंद रोज़।

लूट ले, ओ लुटेरे, लूट ले। हमारा जो कुछ हो, सब लूट ले। हम लुटनेहीको आये हैं। कुछ भी न छोड़ प्यारे लुटेरे !

लूट लूट सब लूट, लुटेरे !
तन धन लूट, लूट मन एरे, लूट प्रान हूँ मेरे॥
लूट नैन, हिय लूट रँगीले, नेह लूट सब लेरे।
निसिदिन लूट मचाय लाड़ले, झलक आपनी देरे॥

तुम लोग बड़े चंचल हो। मैं गा रही हूँ, तुम उधर बाजे सुन रहे हो ! तुम्हें बारातके ही बाजे पसन्द हैं। सुने जाओ। तुम भी अपना दूसरा-तीसरा ब्याह कर डालो। तुम्हारे पत्नी-विरही मित्रने भी तो अपना तीसरा विवाह किया है। अरे, तुम्हारे उसी मित्रने, जो अपनी प्राण-प्यारी पत्नीकी चितापर विरहाकुल हो उस दिन गिरा पड़ता था। बेचारा उस सुन्दरीके विरहमें पागल-सा हो गया था। अब तीसरा ब्याह कर डाला है। नयी सुर-सुन्दरी प्राणप्यारीका प्राण-प्यारा बन गया है। कैसा अनन्य पत्नी-भक्त है ! पतिव्रता नारियाँ भी तुम्हारे पत्नी-व्रत मित्रसे बहुत

कुछ शिक्षा ले सकती हैं। और नहीं तो ब्रह्मचर्य और संयमका पदार्थ पाठ तो सभी पत्नीव्रत-पुरुषोंको ऐसे महात्माओंसे लेना चाहिए।

अरे, यह सब उसी दूलहकी दुलहिनकी लीला है। हाँ, उसीकी, उसीकी। उसी रमैयाकी दुलहिनकी—

रमैयाकी दुलहिन लूटा बजार।
सुरपुर लूट नागपुर लूटा, तीन लोक मचि हाहाकार॥
ब्रह्मा लूट, महादेव लूटे, नारद मुनिके परी पछार।
शृंगीकी मिंगी करि डारी, पारासरके उदर विदार॥
कनफूँका चिरकासी लूटे, लूटे जोगेसुर करत विचार।
हम तो बचिगे साहब-दयासे, शब्द-डोर गहि उतरे पार॥
कहत 'कबीर', सुनो भाई साधो, या ठगिनीसे रहौ हुसियार॥

उससे होशियार रहनेके यही तो रास्ते हैं। प्रेमियोंके साथ विश्वासघात करना, प्रेमका स्वाँग रचना, प्रेम-पात्रोंका उपहास करना तथापि प्रेम-मन्दिरका पुजारी बना रहना ही तो रमैयाकी दुलहिनसे होशियार रहनेका सीधा-सादा उपाय है। स्वर्गीय प्राणेश्वरीका विषम-वियोग कामदेवकी अर्चनासे ही दूर होता है। अरे, तुम्हारे विरही मित्रने होशमें थोड़े ही अपना नया ब्याह किया है। बेचारेने पत्नीकी विरहोन्मत्ततामें ही नई प्रणयिनीको हृदयेश्वरी बना डाला है। देखो तो, तुम्हारा मित्र रमैयाकी

ठगिनी दुलहिनसे कितना होशियार रहता है ! कहो, अब मैं अपने उस लुटेरेसे कैसे होशियार रहूँ ? कौन होशियार रहे। मुबारक हो मेरी यह बेहोशी।

लूट लूट, सब लूट, लुटेरे।

लुटा दो, उसकी यादमें अपना-पराया जो कुछ तुम्हारे पास हो। आँखोंकी नींद लुटा दो। हृदयके भाव लुटा दो। मनके माणिक लुटा दो और आत्माका सर्वस्व लुटा दो। वह लुटेरा भी क्या कहेगा ! लूटे, क्या-क्या लूटता है। अरे हाँ,

तन धन लूट, लूट मन एरे, लूट प्रानहू मेरे।

लूट, लूट, सब लूट, लुटेरे॥

फिर तुम्हारे कान उधर ही लग गये। आँखें भी वहीं टक लगाये हैं! अच्छा, जीभरकर सुन-देख लो। पीछे पगलीका महा-पुराण सुनना।

वाह ! इस बारातका दूलह देखने-योग्य है। आठ-नौ साल-का बुढ़वा है। धन्य हैं इसके माँ-बाप। बहूको देखकर मरनेके पहले अपनी आँखें तो गरम कर लेंगे ! उस भाग्यवती कन्याकी उम्र भी बहुत बड़ी होगी। ज़रूर छः-सात सालकी बुढ़िया होगी ! विधाताने क्या ही अनुपम जोड़ी मिला दी है ! कलियुगी सुधारक इस आदर्श विवाहको गुड़ियोंका खेल कहेंगे। मुये शास्त्र तो पढ़े नहीं, सुधार करने चले हैं। अष्टवर्षा कन्या गौरी होती

है ? सो वह गौरी है और यह वर है शिव। क्या इनके पुत्र कार्तिकेय और गणेश-जैसे बलवान् और बुद्धिमान न होंगे ? अवश्य होंगे। संभव है कि उनमेंसे कोई-कोई तो गर्भमें ही यमसे भिड़ पड़े। अवश्य ही इस भाग्यवान् दम्पतिको राजयक्ष्मा नामकी महासिद्धि सिद्ध हो जायगी, जिसके बलसे इसे यमपुरीका अमोघ दर्शन अनायास ही प्राप्त होगा। ईश्वर करे, तुम्हारे समाजमें घर-घर ऐसेही आदर्श विवाह हुआ करें। ऋग्वेदके लकड़दादेका यह प्रमाण कितना सत्य है—

अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी।
दशवर्षा भवेत् कन्या तदूर्ध्वं च रजस्वला॥

यह श्लोक इतना प्राचीन है, इतना परम प्राचीन है, कि स्वयं विश्व-निर्माता विधाता भी उतना प्राचीन नहीं है। ईश्वरके अस्तित्वमें चाहे विश्वास न भी करे, पर इस प्रमाणकी प्राचीनता और समीचीनतामें तो अवश्य ही प्रत्येक आस्तिक महात्माको विश्वास करना चाहिए। भैया, इस आदर्श दूलहको देखकर मेरा तो अंग-प्रत्यंग पुलकित हो गया है। धन्य है आजका स्वर्ण-दिवस !

लो, इस बारातमें दिव्य वीराङ्गनाएँ भी आई हैं। परम तपस्विनी, परम ब्रह्मचारिणी आदिकुमारियाँ यही तो हैं। इन सावित्रियोंसे संयमकी शिक्षा ग्रहण करो ! व्याह-शादियोंमें इनका

होना बहुत ही ज़रूरी है ! छोटे-छोटे बच्चोंको ये मंगलामुखियाँ इस शुभावसरपर अवश्य ही अपने लोल-कटाक्षोंकी दीक्षा देंगी; इसीसे तो विवाह एक मांगलिक पर्व माना गया है।

क्या कह रही थी, क्या कहने लगी ! तुम लोग बड़े पागल हो ! विषयान्तर हो जानेपर भी मुझे बीचमें टोकते नहीं ! भले श्रोता मिले ! हाँ, वह प्यारा लुटेरा इधर आता भी नहीं। कबसे उसकी बाट जोह रही हूँ। कितनी शादियाँ देख डालीं,कितने ग़म देख डाले। कबसे मन बहला रही हूँ। उस ज़ालिमकी याद भुलानेको क्या-क्या नहीं कर रही हूँ। विचित्र दशा है ! न आता ही है, न भूल ही जाता है। इस दुविधामें मैं तो कहींकी न रही। हा ! क्या करूँ !

सजन, सुध ज्यों जानौ त्यों लीजै।
तुम बिन मेरो और न कोई, कृपा रावरी कीजै॥
दिवस न भूख, रैन नहिं निंदिया, यों तन पल-पल छीजै॥
मीराके प्रभु गिरिधर नागर, मिलि बिछुरन नहिं दीजै॥

तुम्हें अपने साथ क्यों रुलाऊँ ? बाबा, तुम तो मौज करो। जाओ, इस शादीमें शामिल हो जाओ। खूब हँसो, खूब गाओ। मैं यहीं खड़ी-खड़ी रोती रहूँगी। शायद मेरे रोने-धोनेको ये लोग अमंगल समझें। समझने दो। मेरे लिये तो मेरा रोना-धोना ही मंगल है। सुना है कि एक बाल-विधवाको इन भले आदमियों-

ने इसलिए एक कोठरीमें बन्द कर रखा है कि कहीं वह मूर्खा इस मांगलिक अवसरपर रोने न बैठ जाय। ठीक किया है! जीभरकर जिसकी एक बार सूरत भी न देखी थी, उस पति नामधारी मृतप्राणीके वियोगमें वह किसलिये रोती है? उदार समाजने विधवा-ऐसी पवित्र उपाधिसे उस मूर्खाको विभूषित कर दिया है, फिर भी रोती है! अब और क्या चाहती है! मुई अपनी नवयुवती सासके सौभाग्य-शृंगारपर जली मरती है। महातपस्वी पूज्य श्वसुरने अपनी चौथी शादी करा डाली, तो क्या बुरा किया! इसी पुण्य-अनुष्ठानपर रांड जली-भुनी जाती है। किसने मना किया कि वह भगवान् कामदेवकी सेवा-पूजा न करे? करे, पर गुप्तरीतिसे करे। विधवाओंको गुप्तरीतिसेही काम-सिद्धि प्राप्त करनी चाहिए। उनके लिये यही व्यवस्था समाजने दे रखी है। पर वह ठहरी महामूर्खा। खुलकर खेलना चाहती होगी। शिव शिव! यह तो घोर पातक होगा। विधवाओंके लिए तो मदनदेवकी आराधना,

गोप्या गोप्या परं गोप्या गोपनीया प्रयत्नतः।

ऐसा शास्त्रका वचन है। इसीलिये तो बुढ़वा-शास्त्रने बाँह उठाकर यह घोषणा कर दी है कि विवाह करनेका विधुरको ही अधिकार है, विधवाको नहीं। इसके बदलेमें हमारे उदार चेता धर्मशास्त्रियोंने विधवाओंको गुप्त काम-केलिका दिव्य अधिकार दे

दिया है। सो, यह दुर्लभ अधिकार पाकर इन बाल-विधवाओंको अक्षय पुण्य कमाना चाहिए। यदि इनसे अपने अधिकारकी रक्षा करते बन गई तो एक दिन ये अमंगलाएँ मंगलामुखियोंके भी कान काटने लगेंगी।

चूल्हेमें जायँ तुम्हारी विधवाएँ और विधुर। खाक हो जायँ तुम्हारी शादियाँ और ग़म। रोओ चाहे गाओ। मेरा तो रास्ता ही दूसरा है। मेरा साथ दोगे तो अच्छा, और न दोगे तोभी अच्छा।

यां यूँ भी वाहवा है औ वूँ भी वाहवा है!

मेरा मतलब तो उस लुटेरेसे है। उसका मिल जाना ही मेरे लिये मंगल होगा। जबतक वह नहीं मिला, तबतक तुम्हारे सारे मंगल मेरी नज़रमें अमंगल ही हैं। और तो और, मुक्ति भी तबतक महा अनिष्टकारिणी है।

जौ न जुगति पिय-मिलनकी, धूरि मुकति-मुख दीन।

सो, अब तो दया करो! क्यों मरे को मारते हो?

सजन, सुध ज्यों जानौ त्यों लीजै।
तुम बिन मेरो और न कोई, कृपा रावरी कीजै॥

अब तो तुम्हारा विछोह सहा नहीं जाता। क्यों व्यर्थ तड़पा रहे हो। अब भी दया करो, कृपा-नाथ!

प्यारे, अब तौ सही न जात।
कहा करैं कछु बनि नाहिं आवत,निसि दिन जिय पछितात॥

जैसे छोटे पिंजरामें कोउ पंछी परि तड़िपात ।
त्योंही प्रान परे यह मेरे छूटनकों अकुलात ॥
कछु न उपाव चलत अति व्याकुल मुरि-मुरि पछरा खात ।
'हरीचन्द' खींचौ अब कोउ बिधि छांड़ि पांच औ सात ॥

बाँह पकड़कर खींच क्यों नहीं लेते, प्रभो ? खींच ही लिया, तोभी क्या, क्योंकि सुना है कि—

खैंचि आपनी ओरकों डारि देत पुनि दूर ।

सो, अब कुछ ऐसा करो कि खीँचा सो खींचा । क्यों बाबा, ठीक है न ? मैँ उस निष्ठुरके हाथसे अपना वैसा उद्धार नहीं कराना चाहती, जैसा कि तुम्हारा उदार समाज किया करता है । तुम्हारा समाज तो स्वर्गीय है । उसकी कहाँतक प्रशंसा करूँ । यही देख लो, विधवाओंका कैसा आदर्श उद्धार किया है ! ये पाप-पंक-मग्ना बालविधवाएँ सहज ही भगवत्परायणा बना दी गई हैँ । शूद्रस्वरूपा अनधिकारिणी स्त्रियोंको भी एकादशी इत्यादिके व्रतोंकी व्यवस्था दे दी गई है । संयम और ब्रह्मचर्यकी भी शिक्षा दी जा रही है । अदृश्य और निराकार पतिभगवान्की उपासना करनेका भी अधिकार इन भाग्यवती बालविधवाओंको धर्मावतारोंने दे रखा है । अब और क्या चाहिए ! क्या बेचारी सौभाग्यवतियोंके सिरपर बैठेंगी, या गरीब पुरुषोंकी बराबरी करेंगी ? स्त्री और पुरुषमें समानता ही क्या ? पुरुष पुरुष ही है,

स्त्री स्त्री ही है। पुरुष सदा वन्दनीय है, और स्त्री सदैव निन्दनीय है—ऐसा 'पुरुष-शास्त्र' में लिखा है। स्त्री तो 'सदा ताड़नाकी अधिकारिणी है।' कारण कि वह पुरुषकी अपेक्षा घरका काम-काज बहुत अधिक करती है, दूसरोंको हलुवा-पूड़ी खिलाकर खुद सूखा खाती है, और पतिदेवके पाद-प्रहारको भृगुमुनिकी लात समझती है। उनको सिरपर नहीं चढ़ा लेना चाहिए। एक मूर्खने यहां तक लिख डाला है कि—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।

इसका पाठ यों होना चाहिए—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र दानवाः।

अथवा—

यत्र नार्यस्तु ताड्यंते रमंते तत्र देवताः।

हमारे वेदान्ती महात्माओंने ही उनका यथेष्ट सत्कार किया है। 'नरककी हंडी, मायाकी मूर्त्ति' इत्यादि सुन्दर उपाधियोंसे उन्हें विभूषित किया है। वेदान्तियोंकी उत्पत्ति नारियोंसे तो है नहीं, उनका जन्म तो ब्रह्मयोनिसे हुआ है। इसीलिये उन नरक-हंडियोंका रहस्य ब्रह्मभूत वेदान्ती ही ठीकतौर से समझ सके हैं। यह तो मैं कह ही चुकी हूँ कि स्त्री और पुरुषमें समानता ही क्या! पुरुष तो जन्मसे ही पंडित, पुण्यवान्, संयमी और स्थितप्रज्ञ होता है। यदि स्त्री नरककी हंडी है, तो वह

'स्वर्गका हुंडा' है। स्त्रीको अपनी अर्द्धाङ्गिनी मानकर भी वह स्वयं उसका अर्द्धांग नहीं बना है। यही तो उस स्थितप्रज्ञकी निर्लेपता है! स्त्रीको पतिव्रता बननेका उपदेश देकर भी वह स्वयं पत्नीव्रत नहीं बन गया है। यही तो उस महात्माकी निष्कामता है! कहाँतक इस क्षुद्र मुखसे पुरुषकी प्रशंसा करूँ। उसका गुणगान तो वेदभगवान् भी 'पुरुष सूक्त' में करते-करते थक गये हैं। आज उसकी बराबरी करने चली है वह अधम अबला!

कुछ मूर्ख लोग स्त्रीको शक्ति मान बैठे हैं! मान भी लो कि वह शक्ति है। सो क्या हुआ? पुरुषको शक्तिकी क्या ज़रूरत? पुरुष तो अशक्त ही शोभा देता है। सशक्ति पुरुष किस कामका? भगवान् अशक्तोंकी ही रक्षा करता है, सशक्तों या सबलोंकी नहीं। सुना नहीं कि 'निर्बलके बल राम?' शक्ति-प्रयोग उन मंदमति स्त्रियोंके ही हिस्सेमें रहना चाहिए। यह बेगार सुकुमार सुन्दर पुरुषसे क्यों ली जाय! महिषासुर और शुंभ, निशुंभका अपवित्र रक्त पीनेको चंडी ही काफ़ी है। यह रही काम शंकरका नहीं। निर्दोष गोरे सैनिकोंको क़त्ल कर देना पगली लक्ष्मीबाईको ही शोभा देता है। यह अनीति-मय कार्य न्यायपरायण पुरुषके करनेका नहीं है। सौ बातकी बात तो यह है कि पुरुषको शक्तिकी कोई जरूरत नहीं। अब समझे या नहीं?

दो घूंट पानी तो पिला दो, भाई ! प्यासके मारे गला सूख गया है। कैसे कथा कहूँ ! तुम श्रद्धावान् श्रोता नहीं हो। कथापर एक गिलास पानी भी नहीं चढ़ाते। पूरे कलियुगी श्रोता हो। खैर, पानी फिर पिऊंगी। इस पानीसे तो प्यास बुझनेकी नहीं और जिस पानीसे कलेजा ठंडा होगा, वह तुम्हारे बसका नहीं। हाँ! भला उस नीरको तुम कहाँसे लाओगे ! तुम्ही बताओ, उस प्रभुका स्नेह-नीर तुम ला सकोगे? थोड़ासा ही ला दो। एक ही घूँट ला दो। ला दो, तुम्हारे पैर पड़ती हूँ। पगली ! क्या रट लगा रही है। उस नीरको ला देनेकी किसमें सामर्थ्य है। वह आनन्दाम्बु तुझे कौन देगा ?

अरी, मैं वा जल की मछुरी।
ना जानों, जा अगम सिंधुतें कबकी हौं बिछुरी॥
अवगाहे केते सरिता सर, मगन होय बिहरी।
बिषम बिषय-बिष ब्यापि रह्यौ तन, भ्रमि-भ्रमि जाल परी॥
मधुर दूध-दधि भरित सरन बिच निर्भर केलि करी।
दिन-दिन तन दवारि-सी लागी, पल-पल जरी-बरी॥
बिरह-अधीर भई अब कैसेहुँ रहति न धीर-धरी।
'हरि' कब फेरि मिलैगी मेरी आनँद-रस-लहरी॥

वह आनन्दाम्बु, न जाने कब मिलेगा। खैर, मेरे दुःखमें तुम्हें दुखी होनेको कोई ज़रूरत नहीं। तुम तो मेरी कथा सुने जाओ। अच्छा,

हियांकी बातें हियां जु रहि गईं, अब आगेकै सुनो हवाल।

उदार-हृदय पुरुषने कृतघ्ना स्त्रीको एक बहुत ही बढ़िया पुरस्कार दिया है। वह क्या है, जानते हो ? वह है परदा-प्रथा। धन्वन्तरिके मतसे वह परम स्वास्थ्य-प्रदायिनी प्रथा है। पतंजलिके मतसे वह परम चित्त-वृत्ति-निरोधिनी महासिद्धि है। और व्यासके मतसे वह परम सदाचार-विधायिनी प्रणाली है। वह बड़ी ही प्राचीन प्रथा है। वेद तो अभी कलका बना हुआ है! वेद-निर्माणसे तो वह प्रथा बहुत पहलेकी है। उस प्रथाने कुरूपवतियोंको सौन्दर्य, दुश्चरित्राओंको सदाचार और सतीत्व तथा आजन्म रोगग्रस्ताओंको आरोग्य प्रदान किया है। उस स्वर्गीय प्रबला प्रथाने विद्याको खदेड़ दिया है, लक्ष्मीको लथेड़ मारा है और शक्तिको पछाड़ दिया है। उस प्रथाके कट्टर शत्रु, जानते हो, कौन है ? संयमी और सदाचारी पुरुष। उस धर्म-प्रणालीके विरुद्ध जानेवाली स्त्रियोंका सर्वत्र अपयश छाया हुआ है। दुर्गावती, अहल्याबाई और लक्ष्मीबाईको आज कौन श्रद्धाकी दृष्टिसे देखता है ? यह परदाके खिलाफ़ जानेका ही फल है।

परदा तो आज खुदाने भी हम सबोंसे कर रखा है। जिन्हें मैं खोजती फिरती हूँ, वह हज़रत भी कहीं परदा किये बैठे हैं। जब मेरा साईं तक परदापसंद है, तो मैं उस परदेकी तारीफ़ क्यों न करूँ ? पर, उस परदेकी उपमा इस परदेसे कैसे दी

जा सकती है ? पगली, उस प्यारेका परदा तो कुछ और ही चीज़ है। उसकी याद मत किया कर।

पुरुषने स्त्रीके साथ और भी तो अनेक उपकार किये हैं। क्या यह साधारण बात है कि वह वेद-पाठ इत्यादिके भारी भारसे सदाके लिये मुक्त कर दी गई है ? उसे अक्षर-शत्रु बनाकर क्या बुद्धिमान पुरुषने व्यभिचार आदि पापोंसे नहीं बचा लिया है ? गृहिणीसे रमणीमें उसे परिणत कर लेना क्या कोई मामूली बात है ? सहस्रों कुलवधुओंको मंगलामुखियाँ बना डालना पुरुषकी कम सहृदयता नहीं है ! बेचारे पुरुषको आज भी अहोरात्र रमणी-की ही चिन्ता रहती है। उसके स्तनों और नितंबोंकी नई-नई उपमाएँ खोजते-खोजते ग़रीब हैरान हो रहा है। कविहृदय पुरुषने उस महाअपवित्र नारीकी कटिको, जो अनिर्वचनीय पर-ब्रह्मकी कोटिका मान लिया है, सो क्या कोई मामूली समझका काम है ? देखो तो, कृतघ्ना स्त्रीका कैसा सम्मान किया गया है। इतना सब होते हुए भी आजकलकी कुछ शिक्षिता नारियोँने पुरुषोंके ख़िलाफ़ बग़ावत शुरू कर दी है। आज वे शैतानकी बच्चियाँ वेदतक पढ़ना चाहती हैं। अपने भाग्यका निबटारा अपने ही हाथों करना चाहती हैं। लो, अब वे पुरुषकी बराबरी करेंगी ! कल एक कवि-सम्मेलनका उन्होंने इसलिये बाय-काट कर दिया कि उसमें कुछ रसिक कवियोंने प्यारीके कुच-नितंबोंपर

कविताएँ पढ़ी थीं ! कैसी मूर्खा हैं ! उन्हें तो उन कालिदास-वंशज कवियोंका एहसानमंद होना चाहिए था। तुम्हीं बतलाओ, प्यारीके कुच-नितंबोंपर कविता न लिखते तो क्या वे कविवर कालिकाकी भयावनी जीभ और प्रलयकारी नेत्रोंपर समस्या-पूर्तियां करने बैठ जाते ? उन्हें उन कवित्तोंमें अश्लीलताकी बू आ रही थी। पगली पूछती है कि क्या अश्लीलता कोई निंद्-नीय चीज़ है ? मतिराम, पद्माकर, पजनेश आदि महात्माओंने जिस अश्लीलताकी साधनासे जगद्विख्याति प्राप्त की, उसे हम निन्द्य तथा त्याज्य कैसे मानें ? अरे, अश्लीलता ही तो कविता-की जान है। नारि-हृदयकी आराधना करनेवाले पुरुषकी सच-मुच ही आज कमबख्ती आ गई है। हा दुर्दैव !

स्त्रीकी जाति वास्तवमें निन्दनीय है। नारि-निन्दा करनेवाले ही, सच पूछो तो, स्वर्ग-पद पानेके एकमात्र अधि-कारी हैं। स्त्रियोंमें अक्लकी तो एकदम कमी होती है ! मुर्दे पतिके साथ ज़िन्दा ही जलकर ख़ाकका ढेर बन जाती हैं ! कैसी कमबख्त हैं ! यह अनाड़ीपन सिर्फ सती कहलानेके लिये ही कर बैठती हैं। पर क्या कभी किसी पुरुषसे ऐसा ऊटपटाँग काम हुआ है ? अरे, कोई भी समझदार इस तरह मुफ़्तमें अपनी जान न खोयगा ! फिर किस बिरतेपर वे नासमझ नारियाँ समझदार पुरुषोंकी बराबरी करने चली हैं ? अरे, पुरुष पुरुष

ही है। ये दो कौड़ीकी सतियाँ उन वेश्या-विहारी महापुरुषों-की समता कैसे कर सकती हैं। लो, पुरुष चाहे जहां जिस स्त्री-पर बलात्कार कर बैठता है। बताओ, किसी स्त्रीने भी किसी पुरुषपर यह विजय प्राप्त की है? फिर समता कैसी? अरे, रहने भी दो शैतानकी बच्चियो, ये ऊंचे-ऊंचे अरमान!

आग लगे तुम्हारे समाज और समाज-सुधारकोंमें। क्यों माथा खाये जाते हो! ज़रा भी खबर नहीं कि कितनी देर हो गई है! अब उसे क्या ख़ाक ढूँढ़ने चलोगे? अबतक तो कभी-की हम अपनी टोली बनाकर उसे खोजने चल दिये होते। सांझ होनेको आ गई। सारा दिन योंही चला गया। अब कर ही क्या लोगे! अब तो बस—

ऐ मुसाफ़िर! कूचका सामान कर,
इस ज़हांमें है बसेरा चंद रोज।

फिर भी, मेरे प्यारे दोस्तो, दिल न गिराना चाहिए। उस दिलवरकी यादमें तो दिलको सदा ऊंचा ही रखना चाहिए। सो, आओ, उसके नामपर अलख जगाते फिरें। अरे, हां! फिर बचा-खुचा मौक़ा भी हाथसे निकल जायगा।

फिर तुम कहां, औ मैं कहां, ऐ दोस्तो!
साथ है मेरा तुम्हारा चंद रोज़।

ग़रीब पगलोंको तड़पानेमें तुझे क्या मज़ा आ रहा है, रे ज़ालिम?

क्यों सताते हो दिले बेजुर्मको ?
ज़ालिमो! है यह ज़माना चंद रोज़।

आओ किसी बादलकी ओटमें छपे हुए मेरे चान्द ! अब बाहर निकलकर, परदा हटाकर अपना दीदार दे दो। बहुत हुआ, अब मेरे सत्यकी परीक्षा फिर कभी न लेना। पगलोंकी परीक्षा ही क्या। मुझे क्या—परीक्षकको ही दुनिया पागल कहेगी। मुझे अपना परीक्षा-फल सुननेकी इच्छा नहीं है। किसी ऊंचे दरजेमें मुझे मत चढ़ाना, मेरे प्यारे परीक्षक! सामने खड़े होकर तुम तो मुझे फेल ही कर दो। तुम्हें बिना देखे पास भी हो गये, तो लानत उस पास होनेपर !

दिलदार सों जौलौं न भेंट भई,
तबलौं तरिबो का कहावतु है ?

अरे ऊंघते हो क्या ? देखते नहीं, कैसा भारी अनर्थ हो गया है ! शिव शिव ! इस जाड़ेकी रातमें बेचारा ब्राह्मण कहां नहाने जायगा। दुष्ट अछूत देखकर नहीं चलते। ब्राह्मणदेवताने अच्छा किया जो इस हरामज़ादेकी भलीभांति मरम्मत कर दी। पाजीके सिरपर ख़ूब जूते पड़े। ख़ैर,हो जाने दो अशुद्ध—देवताजी, धो-धाकर जूता शुद्ध कर लेना। अछूत चमारके सिरपर रक्तकी धार बहाकर क्या तुम्हारा परम पवित्र जूता किसी मन्त्रसे शुद्ध नहीं हो सकता ? हां, कहां तो एक ब्राह्मणदेवताका पवित्रतम

जूता और कहां एक नरकोपम अछूतका घृणास्पद सिर ! छिः छिः ! इन चांडालोंका उद्धार करने चले हैं कुछ बेवकूफ। सिरपर क्यों नहीं बिठा लेते इन धर्ममूर्ति अछूतोंको ? अरे, ब्रह्मासे भी भूल हो गई। इन नीचोंके शरीरकी बनावट कुछ और ही तरहकी होनी चाहिए थी। मूर्ख विधाताने इन्हें भी वही रूप-रंग दे रखा है। दो आँखें, दो कान, एक नाक, एक मुँह, दो हाथ, दो पैर इन्हें भी ठीक वैसे ही दे दिये हैं जैसे कि ऊँची जातिवालोंको या छूतोंको प्रदान किये गये हैं। इन्हें इतने अंगोंकी क्या ज़रूरत थी ? उस वृद्ध ब्रह्मामें इतनी पक्षपात-शून्यता न होती तो क्या उससे सृष्टि-निर्माणका काम ही न चलता ? इन नीच चांडालोंका पक्ष लेकर सचमुच उसने बड़ी गलती की। हमारे धर्मावतार स्मृतिकार उस बुढ़वाकी गलती सुधारते-सुधारते परेशान हो गये हैं। जय हो हमारे वीर धर्मशास्त्रियोंकी !

मेरी समझमें नहीं आता कि सुधारक क्या सुधार करना चाहते हैं। समाजमें जब एक भी कुरीति नहीं है तब वे सुधार किस बातका करेंगे ? सुरीतियोंका तो सुधार कोई समझदार करेगा नहीं ? अच्छा तुम्हीं बताओ, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, बहुविवाह, दहेज-प्रथा, परदा-सिस्टम आदिको क्या तुम कुरीतियोंमें लोगे ? यदि हां, तो फिर तुम्हारी दृष्टिमें सुरीतियां क्या हैं ? अरे, क्यों बहक रहे हो ? सत्ययुगी क़ानूनोंको मानो,

इसीमें तुम्हारा भला है। कलियुगी सुधारकोंके बहकावेमें न आ जाओ, मेरे सत्ययुगी महात्माओ! लकीरके फकीर बने रहनेमें ही तुम अपनी उन्नति कर सकोगे।

मैंने कभी अपनी सनातनी प्रथाएं नहीं तोड़ीं। सदासे पगली ही बनी चली आ रही हूं। ओ हो! मेरा पागलपन कितना पुराना है! ज़रा भी उसमें हेरफेर नहीं हुआ। अरे, पागलपनमें सुधार करने-करानेकी ज़रूरत ही क्या! उसका बिगाड़ ही सुधार है। मैं लाख अपने रोगकी दवा करूं वह कम तो होगा नहीं! अ रे, मेरा रोग दवा करनेसे तो और भी बढ़ेगा। ठीक है, ठीक है—

मर्ज़ बढ़ता ही गया, ज्यों-ज्यों दवा की।

ज़रा सुस्ता लूँ। अच्छा, पगली मीराका एक भजन सुनोगे तो गाऊँ? सुनो या न सुनो, मैं तो उस पदको गाकर ही रहूँगी। कैसा सुन्दर भजन है!

जोगी मत जा मत जा मत जा,
पायँ परूँ मैं चेरी तेरी हौं॥
प्रेम-भगतिकौ पैंड़ो ही न्यारो, हम कूँ गैल बता जा।
अगर चंदनकी चिता रचाऊँ, अपने हाथ जला जा॥
जलबल भई भस्मकी ढेरी, अपने अंग लगा जा।
मीरा कह, प्रभु गिरिधर नागर, जोतिमें जोति मिला जा॥

इस पदका अर्थ करने बैठूँ तो सारी ज़िन्दगी ही चली जाय। क्या करोगे अर्थ सुनकर ! तुम तो मेरी मज़ेदार बातें ही सुना करो। अच्छा, लो, तुम्हें आज अपने एक सपनेकी कहानी सुनाऊँ। पगलीका सपना भी पागलपनसे ख़ाली न होगा। श्रोताओ ! श्रद्धापूर्वक सुनना। कहीं किसी और कथाके धोकेमें न रहना ! मेरी यह स्वप्न-वार्ता प्रत्यक्ष फल-दायिनी है।

एक रातको मैंने वह गीत बड़े मधुर स्वरमें गाया था। कौन गीत ? अरे, वही उस उन्मादिनी मीराका चुटीला गीत। अरे, सुनकर ही रहोगे तुम तो—

आलीरी, मेरे नैनन बान अड़ी।
चित्त चढ़ी मेरे माधुरी मूरति, उर बिच आनि अड़ी।
कबकी ठाढ़ी पंथ निहारूं अपने भवन खड़ी॥
कैसे प्रान पिया बिन राखूं जीवनमूर जड़ी।
'मीरा' गिरिधर हाथ बिकानी, लोग कहैं बिगड़ी॥

यह गीत गाते-गाते सो गई। पलक झाँपते ही नींद आ गई। पहले एक तालाब दिखाई दिया। कैसा सुरम्य सरोवर था ! खूब कमल खिल रहे थे। वैसा कमल तो फिर देखनेमें नहीं आया। उस तालाबपर बड़ी भीड़ लगी थी। शायद कोई पर्व था। जो हो, बड़ा अन्धेर दिखाई दिया। सैकड़ों चांडाल अछूत

वहां ब्राह्मणोंके घाटोंपर नहा रहे थे। बहुतेरे तो उनमें वेदपाठ करते जाते थे। वहां एक सुन्दर मंदिर भी मैंने देखा। विजय-राघवका मंदिर था। ब्राह्मणोंके हजार रोकनेपर भी नीच अछूत उस मंदिरमें घुस पड़े। सारा मंदिर अछूत हो गया। फिर उन्होंने खूब कीर्त्तन किया। उन्मत्त हो सैकड़ों नीच नाचने लगे! उनके कीर्त्तन की—यह धुन थी! मुझे वह अब भी याद है। हां, यह धुन—

रघुपति राघव राजाराम।
पतित-पावन सीताराम॥

एक अद्भुत घटना हो गयी। दो पुजारी भी उस उन्मत्त मंडलीमें शामिल हो नाचने लगे। उन दुष्ट पुजारियोंने अछूतोंके हाथसे प्रसाद भी लिया। यह पाप-लीला देखकर अन्य ब्राह्मण देवते आपेसे बाहर हो गये। उन धर्मावतारोंने उस भक्तमंडलीकी अच्छी पिटाई की। पर पतित-पावन सीतारामने घोर अन्याय किया। उन्होंने भी ज़मानेकी रफ़तार देखकर अछूतोंकी ही तरफ़दारी की। धर्मरक्षक ब्राह्मणोंका दल-का-दल अंधा हो गया। हाँ, वे दो विभीषण ब्राह्मण ज्यों-के-त्यों चक्षुवान् थे। पतित-पावन रामको ऐसा घोर अन्याय कभी न करना चाहिये था। पगलीके मुखसे तो, भैया, हठात् ये शब्द निकल पड़े कि 'हायरे, कलियुग, तूने हमारे ब्रह्मण्यदेव भगवान्को भी न्यायच्युत कर दिया! कलियुगका राम भी कलियुगी हो गया क्या ?'

देखते-देखते ही स्वप्न-अभिनयका परदा पलट गया। पचासों विवाह-मण्डप दिखायी देने लगे। पर थे सब कलियुगी विवाह। तुम शायद उन्हें सत्ययुगी कहो। खैर, मैं खड़ी-खड़ी धर्म-विडम्बना देखने लगी। एक अग्निकुण्डमें कुछ क्रान्तिकारी नवयुवक जन्म-पत्रियोंका होम कर रहे थे। पंडित-पुरोहित खड़े-खड़े रो रहे थे। पति-पत्नियोंकी जोड़ियाँ अजीब ढंगसे मिलायी जा रही थीं। कुमारियोंके कुमारोंके साथ, बाल-विधवाओंके निस्संतान-विधुरोंके साथ, और—और, अब क्या कहूँ—वेश्याओं-के संड-मुसंड वैरागियों और संन्यासियोंके साथ विवाह कराये जा रहे थे। वृद्ध-विवाह और बाल-विवाहका तो वहाँ कोई नाम भी न जानता था। "अष्टवर्षा भवेत् गौरी" आदि वैदिक प्रमाणों-को तो कोई पूछता भी न था। उन दुष्टोंने सनातनी दहेज-प्रथा-पर भी कुठाराघात कर दिया था। तमाम शादियोंपर मातम-सा छाया हुआ था। सच मानो, मंगलामुखीका नृत्य-गान तो किसी भी मंडपके पास देखनेमें न आया। यह भी कोई विवाह है! सब-के-सब सादे वेशमें थे। चटक-मटक तो वे जानते ही न थे। न कोई किसी स्त्रीके साथ हंसी-मज़ाक करता था, न छेड़-छाड़। सारे बराती साधु-संत-से खड़े थे। देवदुर्लभा सुराका भी सेवन वे अभागे छोड़ चुके थे। क्यों भैया, विवाहके अवसरपर तो सुरा-सेवन अवश्य ही होना चाहिये न? अब कलियुग आ गया है

कलियुग! जो न हो थोड़ा है। आज पुरातनधर्मको कौन पूछता है! हाय रे हाय! कैसे बुरे दिन आ रहे हैं! परमात्मा न करे कि ऐसे पथ-भ्रष्ट विवाह सचमुच ही देखने पड़ें।

और सुनो! एक महिला-विद्यालय भी मैंने स्वप्नमें देखा! प्रायः सभी विषयोंमें पंडिता कुमारियां मिलीं। कई तो आपसमें शास्त्रार्थ कर रही थीं। गार्गी और मैत्रेयीके नाम उपनिषद्में सुने थे। पर उस स्वप्न-विद्यालयमें मैंने पचासों ऐसी कुमारियाँ देखीँ, जो बड़े-बड़े विज्ञानियों और वेदान्तियोंको शास्त्रार्थमें यों-ही परास्त कर सकती थीं। कहीँ मेरा स्वप्न सच्चा न निकल आवे! परमात्मन्, रक्षा करो, रक्षा करो। तुम्हीं कहो भैया, स्त्रियोंको विद्यालयमें जाना चाहिये? पढ़ना-लिखना तो पुरुषोंका काम है। बुढ़वा-शास्त्रमें लिखा है कि :पढ़-लिखकर स्त्रियाँ स्वेच्छाचारिणी हो जाती हैं। सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रोंमें खड़ी होकर वे पुरुषोंके साथ घोर अन्याय करने लग जाती हैं। स्वाधीन पुरुषके अधीन रहना उन्हें फिर क्यों पसंद आने लगा! स्त्रीको तो सदा-सर्वथा पराधीन ही रहना चाहिये—प्राचीनधर्म यही बाहु उठा-उठाकर घोषित कर रहा है। स्त्री और स्वाधीनतामें कभी मेल होना ही न चाहिये। पर उस स्वप्नके महिलाविद्यालयमें इस सनातनी सिद्धान्तपर कुठाराघात किया जा रहा था। सभी छात्राओंमें स्वाधीनताकी विषाक्त भावना देखनेमें आयी। बुढ़वा-

शास्त्रका तो उनमेंसे एक भी कुमारी क़ायल न थी। सभी सरस्वती की अवतार थीं। भगवन्! इस दुष्ट कलियुगसे बचाओ। मेरे धर्मप्राण भारतपर नीच कलिकालने कैसी चढ़ाई कर दी है! ओ धर्म-व्यवस्थापको! बचा लो, इस डूबती हुई नैयाको पार लगा दो।

मेरे स्वप्नमें जातपांत तो एक इतिहासकी खोज थी, जिस-पर लोग खूब मज़ाक उड़ा रहे थे। जातपांतकी क़ब्रें उन्हें खोजमें मिली थीं। मेरे ख्वाबके ज़मानेमें न वहाँ कोई ब्राह्मण था, न क्षत्रिय, न वैश्य और न शूद्र ही। जिस किसीसे पूछा, यही जवाब मिला कि, मैं तो एक भारतीय हूँ। चौकाधर्म चौपट हो चुका था। 'आठ कनौजिये, नौ चूल्हे' जैसे दिव्य सिद्धान्तका तो वे कलियुगी भारतीय अर्थ भी न समझते थे। एक साथ पीते थे, एक साथ खाते थे। छूत-अछूतका कोई भेद ही न था। न कोई किसीसे नीचा था, न कोई किसीसे ऊँचा। सभी बरा-बर थे। जातपांतकी पुरानी सड़ीगली बातें सुन-सुनकर वे ज़िन्दादिल भले आदमी खूब हँसते थे। सच कहती हूँ, मुझे तो उस स्वप्नका वह समाज क्रांतिकी आग उगलनेवाला एक भयंकर ज्वालामुखी-सा देख पड़ा। मेरे अभागे धर्मव्यवस्थापकों-का क्रीड़ाक्षेत्र क्या वह स्वप्न-समाज कहा जा सकता है? कदापि नहीं। धर्मावतारोंका गुज़र वहाँ कैसे हो सकता है!

सचमुच मेरा वह स्वप्न बड़ा विचित्र था। उसे मैं उथल-

पुथलका चलता-फिरता एक विचित्र चित्र क्यों न कहूँ कहीं मेरा वह स्वप्न सत्यमें परिणत हो गया, तो इस ग़रीब भारतपर आफतका पहाड़ टूट पड़ेगा ! मुझे और किसी-की चिन्ता नहीं है, सोच केवल व्यवस्थादायक पंडित-मंडलका है। बेचारे क्रांतिके ज्वालामुखीके अग्नि–उद्गार कैसे सहन कर सकेंगे ! हे मेरे सत्यनारायण स्वामी ! इन पंडितों-की रक्षा करना। दिनदूनी रातचौगुनी बुढ़वाधर्म उन्नति करे ! जात-पाँतके और भी हजारों भेदप्रभेद बढ़ते जायं। अछूतोंके गोर्वान्नित सिर चूर-चूर कर दिये जायं। बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह ही जायज़ माने जायं। अक्षतयोनि विधवाएं परम पुनीत वेश्याओंको नित्य प्रातःकाल आशीर्वाद देती रहें। गर्भपात और भ्रूण-हत्याका बाज़ार गर्म रहे। स्त्रियां सदा-सर्वदा पुरुषके अधीन रहें। कन्या-पाठशालाएँ एवं महिला-विद्यालय नष्टभ्रष्ट कर दिये जायँ। स्त्री कभी अपना सिर न उठाने पायें। शूद्र सदैव कुपात्र और दण्डनीय समझा जाय, तथा ब्राह्मण ही सत्पात्र और अदण्ड्य माना ,जाय। राम करे, बुढ़वा शास्त्रमें एक मात्राका भी हेरफेर न हो। मेरा स्वप्न कभी सच न निकले।

निगोड़ी आँख खुल पड़ी। सवेरा हो गया था। मुझे अपने उसी प्यारे गीतकी याद आ गयी। तब विहागमें अलापती थी, अब भैरवीके स्वरमें गाने लगी। अहाहा !

आलीरी, मेरे नैनन बान पड़ी।

चिड़ियां भी मेरे साथ गाने लगीं! क्या ? यही कि,

आलीरी, मेरे नैनन बान पड़ी।

चित्त चढ़ी मेरे माधुरी मूरति, उर बिच आनि अड़ी॥

अरे, फिर उसी मूर्त्तिका ध्यान आ गया। क्या करूं इस मूढ़तापर—

चित्त चढ़ी मेरे माधुरी मूरति, उर बिच आनि अड़ी।

इस हत्यारी यादसे तो मेरा स्वप्न ही अच्छा था। हाँ, हाँ, स्वप्न बहुत अच्छा था। मैं तो चाहती हूं कि मेरा स्वप्न, राम करे, सच निकले। चारों ओर क्रान्ति-ही-क्रान्ति दिखायी दे। खूब उथल-पुथल हो। तुम्हारे समाजकी यह आलीशान इमारत देखते-देखते ज़मीनमें मिल जाय। तुम्हारी पोथियाँ विप्लवकी बाढ़में बह जायँ। खूब ऊधम हो, खूब उपद्रव हो। हे भगवन्! पगलीका सपना सच्चा निकले।

मेरे सामाजिक विचार पूछने आये थे। लो, सुन लिये, ये हैं मेरे सामाजिक विचार, ये हैं मेरे अग्नि-उद्गार। खूब गालियां दे लो, जी भरकर कोस लो। मुझे तुम्हारा रत्तीभर भी डर नहीं। तुम मुर्दे, तुम्हारा समाज मुर्दा! मुर्दोंसे कौन डरता है ? कुछ ज़िन्दादिली रखते हो, तो आओ, उतर पड़ो मेरे प्रेम-क्षेत्र में। चलो, अपने खोये हुए हीरेको खोज निकालें। जीवन सफल कर लें। अरे, इसीलिये तो गला फाड़-फाड़कर चिल्ला रही हूं, कि

प्रेम-रतनकी लूट है, लूटत बनै तौ लूट।
अंतकाल पछतायगा, प्रान जायँगे छूट॥

सच है, मेरे प्यारे दोस्तो!

है बहारे बाग़ दुनिया चंद रोज़।
देख लो इसका तमाशा चंद रोज़॥

तो, आओ, हिलमिल कर अपने प्यारेको खोजने चलें। यह दिन हाथसे गया सो गया। पीछे पछताव ही रह जायगा।

फिर तुम कहां औ मैं कहां ऐ दोस्तो!
साथ है मेरा तुम्हारा चंद रोज़॥

अच्छा, अब जाओ, पगलीके पीछे मत पड़ो। अब फिर किसी दिन मेरा प्रलाप सुन लेना। हां, इसी घाटपर भेंट हो जायगी। लो, बस जाओ, मुझे तुम्हारे साथ अब माथापच्ची करनेकी फ़ुरसत नहीं। लो, भागो, नहीं तो अब तुम्हारी ख़ैर नहीं। अहाहा! अहाहाहा!!

प्रेम-भगतिकौ पैंड़ो ही न्यारो, हम कूँ गैल बताजा।
अगर-चंदनकी चिता रचाऊँ, अपने हाथ जलाजा॥
ज़ल-बल भई भसमकी ढेरी, अपने अंग लगाजा।
मीरा कह, प्रभु गिरिधरनागर जोतिमें जोति मिलाजा॥
जोगी, मत जा, मत जा, मत जा—
पायँ परूँ मैं चेरी तेरी हौं॥

अ हा हा हा! अ हा हा हा! अ हा हा हा!!

——:०:——

तीसरा प्रलाप



अच्छे आये। बैठो, सुस्ता लो। प्यास लगी हो, ठंडा पानी पी लो। एक पहर रात तो बीत गयी होगी। ऐँ! धूप अब भी बड़ी तेज़ है। यह चाँद सचमुच एक आगका गोला है। न जाने किस पगलेने इस दुष्टका नाम 'शीतकर' रख दिया है! हाँ, सच तो कहती हूँ—

हौं ही बौरी बिरह-बस, कै बौरो सब गाम।
कहा जानि ये कहत हैं, शशिहि शीतकर नाम॥ *

मारे गरमीके जी घुट रहा है। मन चाहता है कि इस प्रलय-कालमें अपनी उसी रोदन-रागिनीकी एक मीठी तान छेड़ दी जाय। अच्छा तो सुनो—

समझ देख मन मीत पियारे! आशिक होकर सोना क्या रे।
रूखा-सूखा गमका टुकड़ा, फीका और सलोना क्या रे॥
पाया हो तो दे ले प्यारे, पाय-पाय फिर खोना क्या रे।
लोक-लाज जब तज दी तूने, तब तेरा फिर होना क्या रे॥
जिन आँखिनमें नींद घनेरी, तकिया और बिछौना क्या रे।
कहै 'कबीर' सुनो हो साधो! सीस दिया तब रोना क्या रे॥

---

* बिहारी-सतसई।

जो अभागा मर रहा हो, वह भले ही अपनी आंख बन्द न करे। पर मेरी बात तो कुछ और है। पगली तो ख़ूब लंबी तानकर सोती है। सच मानो, बड़ी सुखी हूँ। चिन्ता तो जानती ही नहीं क्या है। न ऊधोका देना, न माधोका लेना। पैर पसारे पड़ा रहना ही जीवनका सार मान बैठी हूँ। सारी रात सोती हूँ और सारा दिन सोती हूँ। एक सोनेमें ही तो मज़ा है! अहा!

नींद लेनेका मज़ा जिसके दृगोंमें छा गया।
मुक्त जीवन हो चुका, चारों पदारथ पा गया॥

यह मज़ा तो प्रातःस्मरणीय निद्राचार्य भगवान् कुम्भकर्णने ही लूटा था। भाग्यवान् पुण्यश्लोक राजे-महाराजे भी इस मीठे मज़ेको कुछ-कुछ चख रहे हैं। मदोन्मत्त प्रजाके पवित्र रक्तसे अभिषिक्त सुकोमल पुष्प-शैय्यापर आज हमारे अनेक नराणाञ्च नराधिपः भगवती निद्राकी आराधना कर रहे हैं। चूल्हेमें जाय तुम्हारी प्रजा। ये साक्षात् नारायण-स्वरूप नृपतिगण पापमूर्ति प्रजाकी सेवा करनेको इस धरातलपर अवतीर्ण नहीं हुए हैं। कमबख़्त रिआयाकी टें-टें सुननेके लिये क्या राम और कृष्णके वंशज अपनी मीठी नींद हराम कर दें? राजसिंहासन बड़े भाग्यसे मिलता है! अनेक जन्मार्ज्जित संसिद्धिसे राज्य प्राप्त

होता है। ऐसा देव-दुर्लभ राज्य पाकर भी जिसने प्रमत्त प्रजाको पीस-पीसकर उसके रक्त-मांससे अपना कलेवर पुष्ट न किया, श्रीमती वीराङ्गनाओंके पाद-पद्मोंसे अपना राज-मुकुट अलङ्कृत न किया, समाधि-सुख-दात्री वारुणी-बालाको कंठसे न लगाया, अथवा विदेशको स्व-देश मानकर वहाँ गौराङ्गनाओंको प्रगाढ़ालिङ्गन दे, विलज्जभावसे नृत्य-विहार न कर लिया, उस मूर्खने, उस अभागेने व्यर्थ ही राज-सिंहासनपर अपना अपवित्र पैर रखा।

तुमने भी कुछ सुना है? इस युगमें कुछ निद्रा-शत्रुओंका अवतार हुआ है! उनका नाम प्रजातंत्रवादी और साम्यवादी है। उन्हींमेंसे कुछ मनचले बदमाशोंने प्रजा-हितका शोर मचा-मचाकर भोले-भाले नरेशोंकी सुख-नींद उचटा दी है। नाश हो, उन विलास-बाधकोंका! मुये कहते फिरते हैं कि राजाओंको न तो त्रिलोक-वन्दिता वेश्याओंकी चरण-सेवाही करनी चाहिए, न बोतल-वासिनी सुरा-सुन्दरी हीको कलेजेसे लगाना चाहिए और न बाघिन-जैसी खूँख़ार मछलियाँ वा चिड़ियाँ ही मारनी चाहिए; और भी सुनो, कहते हैं, कि उन्हें संड-मुसंड किसानों और मजूरोंका ईखके रस-जैसा मीठा खून भी न चूसना चाहिए। बदमाश किसानोंका खून न चूसा जायगा तो फिर उसका होगा क्या? अच्छा, अब उन निद्रा-निन्दकोंकी दृष्टिमें नृपतिगणको करना क्या चाहिए। क्या मूर्ख जनकराजाकी

भाँति दुर्भिक्ष-दलित भूखे-प्यासे किसानोंके साथ हल पकड़कर वे खेत जोता करें, या कमबख्त हरिश्चन्द्रकी तरह राज-पाट छोड़-छाड़कर सत्य या धर्मके नामपर डोम-चमारोंकी चाकरी किया करें? आखिर करें क्या? राज्य-शासनसे नावाकिफ़ वे किसानों और मजूरोंके प्रतिनिधियोंके हाथमें देशका शासन सौंप दो। खूब रही! ये जूतियाँ खानेवाले मजूर और किसान शासन-व्यवस्थामें योग देंगे! इन लुच्चोंको राजकीय मामलोंमें हाथ डालनेका हक़ ही क्या? कहा जाता है कि दशरथ और राम भी तो प्रजाकी सम्मति लेकर शासन किया करते थे। यदि सच-मुच वे ऐसा करते थे, तो उनकी यह भारी भूल थी। उनकी भूलसे आजके समझदार'नराणाञ्च नराधिपाः'क्यों न लाभ उठायें। अरे भाई! बड़ोंको ईश्वरने मांस-मद्य-सेवन और पर-स्त्री-गमन-के ही अर्थ तथा छोटोंको, अर्थात् नीच किसानों और मजूरोंको, अपने पूज्य प्रभुओंकी आराधना करनेके लिए ही इस धरातलपर कृपा करके भेजा है। यही पुरातन परिपाटी है और यही सनातन-धर्म है! कुछ इनेगिने प्रजाप्रिय एवं सच्चरित्र भी नरेश हैं, जो अपने ही समान दूसरोंको भी बनाना चाहते हैं, पर आदर्श नृपतिगण उनकी मायामें फँसनेके नहीं! भारतमें प्राचीन कालमें कुछ निद्रारि नीचोंने ऊधम मचाया था। उनका दमन धर्मा-

वतार महाराज वेनने बहुत-कुछ कर दिया था, पर दुष्टोंने उस आदर्श धराधीशका व्यर्थ ही बध कर डाला !

क्यों जागें और क्यों हाथ-पैर हिलायँ मेरे लक्ष्मीके लाड़ले ! एक कविने क्या खूब कहा है! जरा सुन लें कान देकर वे आलस्य-शत्रु प्रजा-हित-वादी !

दुनियामें हाथ पैर हिलाना नहीं अच्छा ।
मर जाना पै उठके कहीं जाना नहीं अच्छा ॥
बिस्तर पै मिस्ले लोथ पड़े रहना हमेशा ।
बंदरकी तरह धूम मचाना नहीं अच्छा ॥
रहने दो ज़मींपर मुझे आराम यहीं है ।
छेड़ो न, नक्शे पा है मिटाना नहीं अच्छा ॥
उठ करके घरसे कौन चले यारके घरतक ।
मौत अच्छी है, पर दिलका लगाना नहीं अच्छा ॥
धोती भी पहिने जब कि कोई ग़ैर पिन्हा दे ।
उमराको हाथ-पैर चलाना नहीं अच्छा ॥

ज़रा फिर सुन लो, क्या ही ऊँची बात कही है ! —

धोती भी पहिने जब कि कोई ग़ैर पिन्हा दे ।
उमराको हाथ-पैर चलाना नहीं अच्छा ॥
सिर भारी चीज़ है, इसे तकलीफ़ हो तो हो ।
पर जीभ बिचारीको सताना नहीं अच्छा ॥

फाकोंसे मरिये, पर न कोई काम कीजिये।
दुनियाँ नहीं अच्छी है, ज़माना नहीं अच्छा॥
सिजदेसे गर बिहिश्त मिले दूर कीजिये।
दोजख़ ही सही, सिरका झुकाना नहीं अच्छा॥

अब सिद्धान्त वाक्य सुनो—

मिल जाय हिन्द ख़ाकमें हम काहिलोंको क्या?
ऐ मीरे फ़र्श, रंज उठाना नहीं अच्छा॥

मैं तो सदा यही मनाती रहती हूँ कि यहाँके महाभाग श्रीमन्त महाप्रलयपर्यन्त सुमन-सेजोंपर पड़े-पड़े खुर्राटे ही भरते रहें। इस असार संसारमें एक सोना ही तो सार है। सोओ, सोओ, सब सो जाओ। सूर्य सो जाय, चन्द्र सो जाय। सारे तारे सो जायँ। पृथिवी सो जाय, आकाश सो जाय। सब सो जायँ। पर हाय रे हाय! यह पगली कैसे सो सकेगी! सब सो जायँगे, मैं ही जागती रहूँगी। सोना तो मैं भी बहुत चाहती हूँ, पर यह नगोड़ी आँख लगे तब न? सच है—

समझ देख मन मीत पियारे! आशिक होकर सोना क्या रे
रूखा सूखा गमका टुकड़ा, फीका और सलोना क्या रे?

करवट बदलते-बदलते या तारे गिनते-गिनते ही रात बीत जाती है। फिर भी मैं सोनेको अच्छा समझती हूँ, निद्राकी ही स्तुति करती रहती हूँ। दूसरोंकी ही प्रगाढ़ निद्रा देख-सुनकर अपनी आँखें सिरा लेती हूँ।

धन्य हैं इस धर्मप्राण देशके साधु-संत और मठधारी महन्त, जो युगोंसे मेरी प्राणप्यारी निद्रारानीकी निष्काम उपासना करते चले आ रहे हैं। इन्द्र-भवन-जैसे विशाल मठ-मन्दिरोंमें नवेली-अलबेली चेलियोंके साथ भगवान् कामदेवकी आराधना करना, अनायास-प्राप्त हलवे और मोहनभोगका श्रीठाकुरजी महाराजको भोग आरोगना, फिर दस-बीस चिलमें गाँजेकी फूँक डालना और रामजीकी इच्छासे पड़े-पड़े मौज करना सबके बसका थोड़े ही है, बाबा! यह बड़ी कठिन तपस्या है। ये सिद्धियाँ पूर्वके पुण्य-संचयसेही सिद्ध हुआ करती हैं। पर, कुछ सुधारक नामधारी दुष्टजन मस्त महात्माओंको भी नींदभर नहीं सोने देते। उनके भोगैश्वर्यपर जले मरते हैं। बेचारोंको उनके मठोंमें जा-जाकर डराते हैं, धमकाते हैं! कहते हैं महाराज, देवोत्तर-संपत्तिपर तुम्हारा क्या अधिकार है? वह तो सर्वसाधारणकी चीज़ है, सो उन्हींके काममें उसका उपयोग होना चाहिए। गुरुद्वाराओंपर तो यार लोग हाथ भी जमा बैठे हैं। कैसा अंधेर मचा रखा है! रसिक महन्तोंके मठ-मन्दिर हथियाना चाहते हैं ये बने हुए डाकू! इतना ही नहीं, ये सुधारक महाशय आज धर्मगुरुओंको भी शिक्षा-दीक्षा देने लगे हैं! बाहु उठा-उठाकर कहते हैं कि, सबसे पहले तो तुम लोग अपने मठ-मन्दिरोंसे बाइयों और चेलियोंको निकाल बाहर कर दो। अन्धे यह नहीं सोचते कि उन अनाथ अबलाओंको यदि

पूज्यपाद महन्तोंने मठोंसे निकाल बाहर कर दिया तो वे बेचारी सती-साध्वियाँ फिर किसकी होकर रहेंगी ? पतित-पावन महन्त उन गरीब बाइयोंको दया करके अपनी छातीसे न लगायँगे, तो फिर इस घोर कलिकालमें उनका उद्धार और कौन करेगा ?

इसी तरह ये लोग साधु-सन्तोंसे गांजे-चरसको तिलाञ्जलि दिलाकर महर्षि पतंजलिके योगसूत्रोंपर हरताल पोत देना चाहते हैं ! अरे हां,—बिना दम लगाये कहीं प्राणायाम या समाधि-साधना सिद्ध हा सकती है ? अजी, गया उन वशिष्ठ, जमदग्नि, पराशर, व्यास इत्यादि असभ्य और उठाईगीरे ऋषि-मुनियोंका जंगली ज़माना । भगवान् विष्णु और शङ्करके कृपा-पात्र अथवा अहं-ब्रह्मास्मिवादी अवधूत परमहंस क्या तुम्हारी, जघन्य जनताकी सेवा करनेको इस नरकोपम मिथ्या जगत्‌में अवतीर्ण हुए हैं ? कहांका देश, और कहांकी जनता ? यह सब धोखेकी टट्टी है । रामजीकी इच्छासे सब माया है, माया । कहते हैं कि, महात्माओं-को लोकोपकार करनेका उपदेश तो श्रीमद्‌भगवद्‌गीतामें स्वयं भगवान् कृष्णने भी दिया है । अजी, दिया होगा कृष्ण भगवान्‌ने ! पुरानी सड़ी-गली गीताकी बातें आज कौन सुनता है ? यह युग प्रकाशका है, अन्धकारका नहीं । कृष्णको कुरुक्षेत्रपर उन्माद रोग हो गया था । इसीसे जो मनमें आया सो बक डाला । फिर गीतामें ऐसा कहीं लिखा भी तो नहीं है । तिलकके

गीता-रहस्यमें शायद कहीं लिखा हो, सो वह प्रामाणिक नहीं। गीता-रहस्य तो तिलकके कारावासका प्रलाप है। अस्तु, संत-महात्माओंको लोकोपकार करना किसी भी दशामें उचित नहीं। उनके सुकोमल मिथ्या शरीर लोक-सेवाके लिए विधाताने नहीं बनाये हैं। वे मस्त भक्त और अवधूत तो सिर्फ आनन्द-रस-पान करनेको ही इस पाप-संतप्त पृथिवीपर अवतीर्ण हुए हैं। शिव शिव! परमात्माके अचल नियमोंमें ये कलमुहे सुधारक उलट-फेर करने चले हैं! तुम तो सोये जाओ सुखकी नींद मेरे मस्त सन्त-महन्तो!

निद्रा रानी मेरी बाल-सहचरी है। हम दोनोंमें पहले बड़ी प्रीति थी। पर हाय! दुष्ट दैव हमारी मित्रता न देख सका। यदि सच पूछो तो बेचारे दैवका भी कोई दोष नहीं। मेरे और मेरी सखीके बीचमें उस प्राण-प्यारे लुटेरेने ही मनमुटाव पैदा करा दिया है। न जाने, आज मेरी सखी कहां गयी।

सखी, मेरे नैननि नींद दुरी।
तलफि-तलफि योंहीं निसि बीतति, नीर बिना मछुरी॥
उड़ि-उड़ि जात प्रान-पंछी तहँ, बजति जहाँ बँसुरी।
'जुगल प्रिया' पिय कैसे पाऊँ, प्रगट सुप्रीति जुरी॥

हा! मेरी प्यारी सहेली, उस निठुरकी छाया पड़ जानेसे तू भी ऐसी निठुर हो गयी, जो हाथ जोड़ने वा पैर पड़नेपर भी अपनी पगली सखीकी आँखोंमें नहीं रमती। भूल हुई जो तुझे बुलाया। भली न आयी, बहिना! कहाँ ठहराती, कहाँ रमाती?

जिन नैननि पिय-छवि बसी, पर छबि कहाँ समाय।
भरी सराय 'रहीम' लखि, आपु पथिक फिरि जाय॥

प्यारी बहिन, संसारमें आज सर्वत्र ही तेरा तिरस्कार हो रहा है। जहाँ देखो तहाँ समाज-सुधारक या देशभक्त नामके दुर्दान्त दैत्य-दानव तुझे निगल जानेके लिये मुहँ बाए घूमते फिरते हैं। तेरे सुदृढ़ गढ़ोंपर उन नर-पिशाचोंने चढ़ाइयाँ कर दी हैं। जापान, रूस, तुर्किस्तान, ईरान, चीन और अफ़गानिस्तान आदि मज़बूत क़िलोंपर अभी कल-परसोंतक महारानी निद्राका अखण्ड अधिकार था। कमाल किया उन शैतानके बच्चोंने। देखते-देखते उन दुष्टोंने सभी दुर्ग धराशायी कर दिये हैं। रूसगढ़के रसिकराज ज़ार नामक सेनापतिके पराभवसे जगद्विजयिनी निद्राको भारी धक्का पहुंचा है।जापान-जाग्रतिसे क्या कम वज्रा-घात हुआ? वहाँके आततायी आलस्यारि तो मेरी सखीको आज जापानकी भूमिपर पैर भी नहीं रखने देते हैं। खुदाका खास बन्दा ख़लीफ़ा भी अमन-अमानसे निद्राकी नौकरी न बजा सका, कमालपाशाने उसका भी लोहेका क़िला ढहा दिया। ख़लीफ़ाके साथ तुरकिस्तानका खुदा भी निकाल बाहर कर दिया गया! इस अन्धेरका कुछ ठिकाना! ईरानका क़िलेदार शाह तो बिल्कुल ही बेक़सूर था। उसका सुरम्य फ्रांसमें सैर-सपाटा करना ही क्या जाग्रतिवादी नरपिशाचोंकी दृष्टिमें एक अक्षम्य अपराध हो गया?

और तो और, साम्राज्यवादीतक आज निद्रा-रानीका अपमान करनेपर तुले हुए हैं। साम्राज्य-रक्षा कदाचित् वे इसी धाँधलीसे कर सकेंगे! अफ़ग़ानिस्तानका अमीर भी चौकन्ना हो गया है। अब शायद ही निद्रा महारानी वहाँ टिक सकें। हा! मेरी सखीके मस्तकपर आये दिन एक-न-एक वज्र-पात होता ही रहता है। चीनका कैसा मज़बूत क़िला था! वहाँके अफीम-सेवी योद्धाओंसे लोहा लेना क्या आसान काम था? पर दिनोंके फेरसे वहाँका भी पाँसा उलट गया। सच है—

'दिननके फेर तें सुमेरु होत माटी कौ।'

महारानी निद्राको चीनका भी क़िला दो दिनमें खाली कर देना पड़ा। अभागिनीका वहाँ भी आज निर्वाह नहीं। बेचारीकी ऐसी दुर्दशा देख-सुनकर कहाँतक कलेजा थामे रहूँ। सत्यानास हो उन निद्रादमन-दानवोंका। निद्रा-निकेतन भारतमें भी आज उन हत्याकांडियोंने अपना दिग्विजयी जागरण-शंख फूंक दिया है। हा निद्रे! हा निद्रे!!

पर, पगली! तेरी सखीको भारतवर्षसे बहिष्कृत करना सहज नहीं है। यहां उसके रक्षक साक्षात् मधुसूदन विष्णु भगवान् हैं, जो चार महीनेतक बराबर निद्रासुन्दरीके साथ रमण करते रहते हैं। हाँ, ठीक चार महीनेतक—आषाढ़की देवशयनी एकादशीसे कार्तिककी देवोत्थानी एकादशीतक! लक्ष्मीकान्त

सोते हैं चार मास, तो लक्ष्मी-नंदन सोते हैं बारहो मास! इसी लिए राजे-महाराजे, सेठ-साहूकार, मठधारी महंत या राजपुरोहित सच्चे वैष्णव कहे जाते हैं !

पगलीका साथ छोड़ जानेसे ही तो अभागिनी निद्रा इस दशाको पहुँची है ! मेरे साथ यदि आज वह होती तो किस मूँछवाले जागरणवादीकी मजाल थी, जो उसे तख्तसे उतारकर गली-गलीकी भिखारिन बना देता? यहाँ मेरे पास किसी समाजसेवी या देशभक्त नर-पिशाचकी दाल न गलती। तब तो मुझसे सलाह लेने आयी नहीं, अब दर-दर मारी-मारी फिरती है। भोगे अभागिनी अपने कियेका फल!

क्यों, भाई! मैं क्या सचमुच पगली हूँ? हूँ, पगली तो हूँ। क्या कहती थी, क्या कह गयी! अरे, किधर बह गयी! तुम लोग भी अजब हो। बीचमें कहीं टोकते भी नहीं। वक्ताको श्रोता भी खूब भाग्यसे मिले! अच्छा, अब याद आ गया अपना वही पुराना प्रसंग। मारे गरमीके जली-भुनी जाती हूँ। शायद हिमालयके गह्वर भी मुझे इस आगसे न बचा सकें। क्यों, बाबा, तुम कुछ ज्योतिष भी जानते हो? लो बताओ, मेरे इस चारुचन्द्रका उदय अब कब होगा? मेरा वह कैसा चन्द्र है! उसे तुम क्या जानो! मेरा चन्द्र, मेरा चन्द्र—

तेरो मुखचन्द्र, चकोरी मेरे नैना।

मेरी मरमकी बात तुम न समझ सकोगे, क्योंकि—

'भगवत रसिक' रसिककी बातें,

रसिक बिना कोई समुझि सकै ना।

वह चन्द्र एक ही बार तो देखनेको मिला। सच पूछो तो मेरा वही चन्द्र सुधाकर है। तुम्हारा यह गगनचारी सकलंक रंक चंद्र सुधाकर कैसे हो सकता है? अरे, यह तो विषाकर है विषाकर! इस कलंकी कसाईका तो नाम भी न लेना चाहिये। धिक्कार है इसे—

एरे मतिमंद चंद! धिग है अनंद तेरो,

जो पै बिरहिनि जरि जाति तेरे ताप तें॥

तू तौ दोषाकर, दूजे धरे है कलंक उर,

तीसरे कपालि संग देखौ सिर-छाप तें॥

कहै 'मतिराम' हाल जाहिर जहान तेरो,

बारुनी कौ बासी, भासी रविके प्रताप तें।

बांध्यो गयो, मथ्यो गयो, पीयो गयो, खारो भयो,

बापुरो समुद्र तो कुपूतहीके पापतें॥

अस्तु, ज्योतिष जानते हो, तो मेरे चारुचन्द्रोदयका समय बताओ। चुप क्यों हो, भाई, तुम क्या ज्योतिर्विद्या नहीं जानते? भूल हुई, जो तुमसे प्रश्नका उत्तर माँगा! मेरे प्रियतम

चन्द्रके संबंधमें तुम कह ही क्या सकते हो ? अरे, सैकड़ों ब्रह्मा, सैकड़ों विष्णु और सैकड़ों शिव जिस चन्द्रकी चरण-अर्चा किया करते हैं, उसका पता तुम जैसे भुनगोंको कहीं लग सकता है ? तुम्हारी इस खोखली ज्योतिर्विद्याकी वहाँतक रसाई ही नहीं है। फिर किस बूतेपर उसका उदयकाल तुम निकालोगे ?

बहुत भुलाती हूं, पर भुलती नहीं। रह-रहकर उस हृदय-विहारी चारुचंद्रकी याद आ ही जाती है। क्यों उससे प्रीति जोड़ी ? निगोड़ी प्रीतिको बहुत-कुछ छिपाये रही, पर छिप न सकी। पगली किसी भेदका छिपाना क्या जाने। आज सब भेद खुल गया—

अब तौ प्रगट भई जग जानी।
वा मोहन सों प्रीति निरन्तर नाहिं रहैगी छानी ॥
कहा करौं सुन्दर मूरति इन नैननि माँझ समानी।
निकसति नाहिं बहुत पचि हारी, रोम-रोम उरझानी ॥
अब कैसे निरबारि जाति है, मिलै दूध ज्यों पानी।
'सूरदास' प्रभु अन्तर्यामी, ग्वालिन मनकी जानी ॥

उस मोहन मूर्तिको कैसे भुला दूँ। उसे भुला देना मानों अपने ही रूपको भूल जाना है। उससे सुलझ जाना मानों अपनेको उलझा देना है। उससे छुटकारा पाना मानों अपनेको फँसा लेना है—

निकसति नाहिं बहुत पचि हारी, रोम-रोम उरझानी।
उलझी रहने दो। कौन सुलझावे। बस,
अब तौ प्रगट भई जग जानी।
वा मोहन सों प्रीति निरंतर नाहिं रहैगी छानी॥

कौन पड़े इस प्रीतिके पचड़ेमें। लो ये आ गये वे क्रान्ति-कारी निद्रा-नाशक! सर्वनाश हो इन नर-पिशाचोंका! बड़े निर्दय हैं। दया तो ये जानते ही नहीं। इनका एकमात्र काम शान्ति-भंग करना है। न खुद सोवें, न दूसरोंको नींदभर सोने दें। न खुद आराम करें, न दूसरोंको करने दें। कैसे आततायी हैं! मैं तो इन्हें जीवनभर पानी पी-पीकर कोसूँगी। तुम भी तो देशभक्त हो? हाँ, तभी बुरा मान बैठे हो। पर, यह अच्छा नहीं किया। पगलीकी बातोंका भला कोई बुरा मानता है! मैं देशभक्तों और समाज-सुधारकोंको गालियाँ तो बेशक देती हूँ, पर मनसे उनका बुरा नहीं चाहती। मुझे विभीषण वा जयचंद-की उपमा न दे डालना। यह याद करके मैं भी तो आनन्द-सागरमें डुबकियाँ लगाने लगती हूं कि 'भारतवर्ष मेरी जन्म-भूमि है।' न जाने क्यों भारतसे मैं अपना मोह नहीं तोड़ सकती। इस दिव्य भूमिपर पगलीको भी अभिमान है। धन्य हमारा भारतवर्ष!

मैं विश्वप्रेमकी भिखारिन हूँ, इसीलिये भारत-भक्ति चाहती

हूँ। या यों कहूं कि मैं भारत-भक्तिद्वारा विश्वप्रेमकी साधना करना चाहती हूँ। स्वदेश-प्रेम, विश्व-प्रेम और ईश्वर-प्रेममें अन्तर ही क्या है! अरे, ये सब प्रेम मेरे प्यारेके ही तो प्रेम हैं। उसीके रमनेके तो ये सारे ठौर हैं।

पर, आज सच्चा प्रेम कहाँ है? न राष्ट्र-प्रेम है, न विश्व-प्रेम! वह पाखंडी राष्ट्र-संघ विश्व-प्रेमका स्वांग रच रहा है। छिः छिः! अर्थलोलुप स्वार्थियोंके दाव–पेंच और विश्व-प्रेममें क्या पृथिवी-आकाशका अन्तर नहीं है? मैं पाखंडियोंपर गालियों-की वर्षा किया करती हूँ। सच्चे देश-प्रेमियों या विश्व-सेवियों-को भला मैं गालियाँ दे सकती हूं? पर, ईमानसे तुम्हीं बताओ, सच्चे स्वदेशप्रेमी या विश्वप्रेमी अथवा भगवद्भक्त संसारमें कितने हैं? कितनोंके दिलमें देश और दुनियाके लिए दर्द है? जन-सेवाके लिए कितने कमबख्तोंने अपनी खुदीकी कुरबानी की है? कितने आज मर-मिटनेको खड़े हैं? अरे बाबा, इन प्यारे प्राणोंका मोह छोड़ देना कुछ सहज काम नहीं है। सच्चा प्रेम खाँड़ेकी धार है। क्या सुना नहीं है कि—

यह प्रेमको पंथ कराल महा, तरवारकी धार पै धावनो है।

प्रेमी पागल होते हैं। वे कुछ कहते नहीं, कर दिखाते हैं। देश-भक्त होनेकी इच्छा करो या विश्व-प्रेमी होने की—यह निश्चय है कि पहले पागल होना पड़ेगा। प्रतापसिंह, शिवाजी और गोविन्द-

सिंहको क्या तुम पागल नहीं मानते? यदि नहीं, तो तुम प्रेमका मरम ही नहीं समझते। नेपोलियन, मेज़िनी और वाशिंगटन कहाँके समझदार थे? इन सभीपर पागलपनका भूत सवार था। मेक्स्विनी भी तो इन्हींकी जात-पाँतका था। वह लेनिन भी एक दरजेका सिड़ी था। इसी तरह सनयातसेन भी परले सिरेका सनकी था। कमालपाशाका दिमाग़ क्या उसके क़ाबूमें है? मसोलिनीको कौन समझदार अक्लमंद कहेगा? अब अपने भारतको लो। देखो, वह गीतारहस्यवाला तिलक अन्तकालतक पागल ही बना रहा। इसी तरह उस सर्वस्वत्यागी दासका भी दिमाग़ चक्कर खा गया था। और यह गांधी? अरे, यह तो पागलोंका सरदार है। इसका पागलपन तो आज जगद्विख्यात है। अभी कलकी ही बात है। 'काकोरीके डाकू' नामधारी कुछ पागलोंने हृदयवल्लभा फाँसीको कल ही गलेसे लगाया है। भैया हो, मृत्युके आशिक़ पागल ही प्रेमी हुआ करते हैं, मुझे तो कुछ ऐसा ही समझ पड़ा है।

पर, समझदारोंकी बात न पूछो। वे सभी भक्त और प्रेमी हैं। ईश्वर-भक्ति और स्वदेशभक्ति—दोनों ही—समझदारोंके बाज़ारमें टके सेर बिक रही हैं। नाम और यश प्राप्त करनेको नेताओं और आचार्योंका टिड्डी-दल उमड़ पड़ा है। मुँह फाड़-फाड़कर व्याख्यान झाड़ने तथा 'हाय देश, हाय जाति' के चटकीले

रंगोंसे अख़बार रंगनेसे ही तो इस दुर्दलित देशका उद्धार होगा! ज़बान और क़लमके दाव-पेंच जाने बिना भला कोई देशोद्धारक हो सकता है? चतुर खिलाड़ी ही स्वदेश-भक्त या विश्व-प्रेमीकी डिगरी हासिल कर सकता है। गिरगिट और नेतामें जबतक समानता न होगी, तबतक देशोद्धार आकाश-पुष्पवत् ही है। देश-भक्ति शतरंजका खेल है। खिलाड़ी सुघर चाहिए, बाजी मार लेना कुछ कठिन नहीं। मतलब यह कि चंट-चालाक ही देश-भक्त हो सकता है। आया कुछ समझमें?

कारागारकी काल-कोठरियोंमें सड़ने—गलनेवाले या फाँसीके तख़्तोंपर लटकनेवाले कमबख़्त भी कहीं नेता कहे जा सकते हैं? वे तो मनचले पगले हैं। कमसे-कम राजनीति-विशारद तो उन्हें यही नाम देते हैं। मैं भी कहती हूं कि वे पगले हैं। स्वाधीनताका मज़ा वे क्या जानें? जिनको अपने प्यारे प्राणोंसे प्रेम नहीं है, वे मूर्ख स्वदेशप्रेमको समझ ही क्या सकते हैं? क्यों, ठीक है न? वे तो सिर्फ़ एक बात जानते हैं। अपनी धुनमें मस्त होकर स्वतन्त्रतादेवीके चरणोंपर अपनी सस्ती हड्डियाँ चढ़ा देना ही उनकी समझमें आया है, और यही वे कर गुज़रते हैं। ख़याल करो, यह भी भला कोई देश-प्रेम है! तभी तो पढ़ी-लिखी दुनिया उनकी बेवकूफ़ीसे भरी कुरबानीपर हँसा करती है। हाँ, उन्हींकी तरह कुछ पगली अपढ़ जनता उनके तीर्थोपम मरघटों या

क़ब्रोंपर घुटने टेक-टेककर आँसुओंसे भीगे फूल चढ़ाती और आरती उतारा करती है। पर यह सब भावावेश है। जिसका देश-प्रेमसे कोई संबन्ध नहीं। देश-भक्तिका सम्बन्ध हृदयसे नहीं, मस्तिष्कसे है। यह मेरा सिद्धान्त नहीं, समझदारोंका है। मैं तो एक पगली हूँ, इसलिए मेरी दृष्टिमें तो वेही कमबख़्त पगले पक्के देश-भक्त और मुल्कके सच्चे रहनुमा हैं। भैया, आज़ादीके लिए अपनी जानपर खेल जाना हर किसीका काम नहीं। आया कुछ समझमें? सच है—

यह प्रेमको पन्थ करार महा तरवारकी धार पै धावनो है।

यही बात पगली मीरा भी कह गयी है—

हेरी, मैं तो प्रेम-दिवानी, मेरा दरद न जानै कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी, केहि बिधि सोना होय॥

ठहरो, ठहरो। अरे, ठहरो। यह 'स्वाहा-स्वाहा' का गगन-भेदी शब्द किधरसे आ रहा है? किसी यज्ञ-मंडपसे आता होगा, और कहांसे! ख़ूब कहा! इस भुक्खड़ देशमें आज कौन यज्ञ करेगा? भूखके मारे जहाँ पीठसे पेट लगा जा रहा है, वहाँ आगमें फेंकनेके लिये कहाँसे अन्न और घी आयगा? झूठ है। यह किसी यज्ञ-कुण्डका शब्द नहीं हो सकता। सुनो, सुनो, यह शब्द एक विचित्र यज्ञका है। अरे, वह स्वाधीनताका यज्ञ है। अब समझमें आ गया। वह तो बड़ा भयंकर यज्ञ होगा।

उसके आगे अश्वमेध, राजसूय आदि यज्ञ किस गिनतीमें हैं ? सच पूछो तो स्वाधीनताका यज्ञ ही एक सच्चा यज्ञ है। क्या देखोगे उसे ? डरोगे तो नहीं ? ओह ! कैसी भयावनी वेदी है। वे देखो, स्वार्थके प्रबल शत्रु यज्ञ-मंडपमें बैठे हैं। कैसा विकराल हवन-कुण्ड है ! लाखों वीर अपने पवित्र मुंडोंकी आहुतियाँ दे रहे हैं। हजारों लाल अपनी-अपनी माँकी गोद सूनी करके आप ही उस कृतान्त-कुण्डमें कूद रहे हैं। सहस्रों नवयुवक अपनी-अपनी प्राणवल्लभाका प्रेमपाश तोड़-ताड़ उस ज्वाल-मालाको छातीसे लगा रहे हैं। यज्ञ-कुण्ड अपनी भयावनी जीभको कैसा लपलपा रहा है। क्यों, तुम्हें कुछ दिखायी दिया ? अरे, यह सब क्रांति-क्रीड़ा तुम्हें दिखायी नहीं देती ! पगली तो खूब देख रही है। मुझे संजय जैसी दृष्टि प्राप्त हो गयी है न ! देखो, वह उठ रही है ज्वाला। वह है यज्ञ-मंडप। देखो, देखो, अरे, तुम क्या देखोगे ! शान्तिका निर्जीव स्वप्न देखते-देखते तुम तो अपनी आँखोंका ओज ही खो बैठे हो। इन फूटी आँखोंसे, इन रँगीली-रसीली आँखोंसे विप्लव-विहार कैसे देख सकोगे ! तुम्हारे पास वे आँखें ही नहीं, देखोगे किससे ! मैं देख रही हूँ, और खूब देख रहा हूं। बलिहारी ! यज्ञ-कुण्डमेंसे माताकी कैसी भव्यमूर्ति प्रकट हुई है ! अहाहा !

वन्देमातरम् !

त्रिंशत्कोटि-कंठ कलकल-निनाद कराले,
द्वित्रिंशत्कोटि भुजैर्धृत खर कर वाले,
के बोले, मा तुमि अबले ?
बहुबल धारिणीम् , नमामि तारिणीम् ,
रिपु-दल-वारिणीम् मातरम्—
वन्देमातरम् ।

कुरुक्षेत्रपर अर्जुनको जिस विराट् रूपका दर्शन हुआ था, उसमें और इस अखिल जगद्व्यापिनो शक्ति-मूर्तिमें अन्तर ही क्या है ! वह रूप और यह रूप—दोनों ही—अपने हृदय-रमणके विशाल नेत्रोंमें चित्रित देख रही हूँ । हाँ, माई, सच तो कहती हूं—उसी मुख-चन्द्रसे वह विश्व-रूप प्रकट हुआ था, और उसीसे यह मातृ-रूप आविर्भूत हुआ है । अहा, वह मुखचन्द्र ! अरे, उस मुख-चन्द्रके बिना तुम्हारे सहस्र-सूर्य-प्रकाशित ब्रह्माण्ड मुझे अंधकारमय ही देख पड़ते है । वह मुख-चन्द्र, वह मुख-चन्द्र !

है ! उसे देखे कितने वर्ष बीत गये, कितने युग चले गये ! कुछ ठिकाना ! बड़ी निर्लज्ज हूँ । बड़ी अभागिनी हूँ । बड़ी आत्म-घातिनी हूँ । बिना उस जीवन-धनके यह जीवन किस काम का ? पर, मैं—हाँ, मैं फिर भी जीती हूँ ! चलती हूं, फिरती

हूँ, गाती हूँ, रोती हूँ ! यह सब सनक नहीं तो फिर क्या है ! हाय ! अपने उस जीवितेश्वरको कबसे नहीं देखा ! किसलिये यह जीवन लिये फिरती हूं ! इसे जीवन क्यों कहूँ ? यह जीवन, जीवन नहीं। यह जीना तो मौतसे भी बुरा है। उस प्यारेके ना जीवन कैसा ? बिना उस दिलवरके दिल कैसा ? बिना उसके अब जीवन रखकर करूँगी क्या ?

ना वह मिलै न मैं सुखी, कहु जीवन क्यों होय।
जिन मुझको घायल किया, मेरी दारू सोय॥

उसी घायल करनेवाले हकीमके हाथसे दवा खानेकी आशामें अबतक जीती हूँ। न जाने वह ज़ालिम हकीम कब अपने दीदार-की दवा देगा। मुझे तो इसमें तनिक भी शक नहीं कि—

वहई रोग-निदान, वहै वैद, औषध वहै।

सो, अब तो—

मीराकी तब पीर मिटैगी, जब वैद सँवलिया होय।

कहाँ और कैसे मिलेगा वह शिकारी हकीम ? मैं आशा तो छोड़नेकी नहीं। कभी-न-कभी तो आकर दवा देगा ही। क्यों, भाई, ठीक है न ? सच है—

जिन मुझको घायल किया, मेरी दारू सोय।

मैं ने आजतक कभी किसी वैद्य-हकीमसे दवा-दारू नहीं करायी। कोई रोग हो, तभी न इलाज कराऊँ ? मेरा रोग

मामूली रोग नहीं, प्रेम-रोग है। ख़ुदापरस्ती या वतन-परस्ती इसी रोगके रोगीको सूझती है। सरफ़रोसीका मज़ा अभागे तन्दुरुस्त क्या जानें। सूली या फाँसीका तख़्ता ही इश्क़के मरीज़ों-की पुरअसर दवा है। अरे भाई, भूलते हो—उसी तख़्तेपरसे तो कृष्णका-रमण रूप और राधाका शक्ति-रूप देख पड़ेगा। प्रेमके रोगियोंको ही मेरी माँ शक्ति-औषध प्रदान करती है। जय मातृ दुर्गे! गाओ, मेरे साथ गाओ—

वन्दे मातरम्।

बहुबल धारिणीम्, नमामि तारिणीम्,
रिपु-दल-वारिणीम् मातरम्।

वन्दे मातरम्।

ओ पागलो! मेरे स्वरमें स्वर मिलाकर तनिक यह कामना तो करो। अहा!

भाल पै धौल हिमाकृति चंदन,
जासु छटा नभ माहिं लसी रहै।
अंकमें खेलति ब्रह्मजा, जन्हुजा,
भानुजा, सिन्धु सदा हुलसी रहै॥
बिन्ध्य बनावत मेखला मंजु,
सदा अरिही झनकार धसी रहै।
पूजत जा पद सिंधु सदा,
सोइ भारत-भू मन माहिं बसी रहै॥

जो सजला सफला कमलावति,
भानु-प्रभा सों सदा बिकसी रहै।
सारद-सोम-सुधामयी चांदनि,
जा बसुधातलमें बिहँसी रहै॥
प्रेम-पगी सुमनावलि मानिक,-
रासि सदा जेहि क्रोड़ लसी रहै।
दिव्यविभूति-प्रसूतिमयी,
सोइ भारत-भू मन माहिं बसी रहै॥ *

अहा! हमारी मांकी कैसी दिव्य छटा है! हम सब क्या इसी जननीकी सन्तति हैं? कौन हम? अरे, वही हम, जिन्होंने अपनी इस माँको बँधवाकर कारागारमें फेंक दिया है! अरे, वही हम, जो अपनी माँका रक्त पीनेवालों नर-पिशाचोंकी चरण-अर्चा किया करते हैं। ऐसे हम धन्य हैं, धन्य हैं!

माँ! ओ पगलीकी माँ! मुझे एक आदेश-पत्र देगी? बिना मेरी माँका आदेश-पत्र लिये तुम लोग कर ही क्या सकते हो? अब अहंकारके अतिवादसे काम न चलेगा। क्या खूब! कभी तो तुम अन्धी भावनाके पीछे पागल हो जाते हो और कभी जड़-साधनाके आगे सिर झुका देते हो! कहीं एक पहिएसे रथ चला है? हृदय और मस्तिष्कमें क्यों व्यर्थ झगड़ा करा रहे

* मुन्शीराम 'विशारद' एम० ए०।

हो ? व्यक्ति-पूजा और सिद्धान्त-पूजा, दोनोंकी ही साधकोंको ज़रूरत है। तुमने तो अभीतक व्यक्ति-पूजा ही सीखी है। तिलक, अरविन्द और गान्धीकी कोरी मूर्त्ति-पूजासे तुम उन महापुरुषोंके साथ ख़ूब तादात्म्य कर चुके! अरे, बिना मेरी माँका आदेश पाये तुम लोग उन महात्माओंके अनुयायी कैसे बन सकोगे ? सो, पहले वह आदेश प्राप्त कर लो। देश-भक्त बनना हो, तो ख़ुदी देकर आदेश ख़रीद लो। ख़ुदगरज़ी और वतन-परस्तीका साथ कैसे निभ सकता है! स्वार्थ और प्रेममें कभी मेल हुआ है ?

मैंने अभी क्या कहा था, कि तिलक, अरविन्द और गांधीकी कोरी मूर्त्ति-पूजासे तुम उन महापुरुषोंके साथ खूब तादात्म्य कर चुके! हाँ, ठीक तो कहा था। अरे भोले-भाले भाइयो! मूर्त्ति-पूजा बुरी नहीं। वह भी ज़रूरी है, पर अपनी किसी एक हदतक। तुम उनके रूपकी पूजा करते हो, गुणकी नहीं। क्यों, यही बात है न ? आज राम और कृष्णके मूर्त्ति-पूजकोंके जीवनमें तुम्हें राम और कृष्णके कितने गुण देखनेमें आये हैं ? तुम्हारे समाजमें आज कितने राम-भक्त हनुमान् हैं या कितने कृष्ण-सखा अर्जुन हैं ? कम-से-कम मुझे तो तुम्हारी यह भक्ति-भावना पसंद नहीं। इसी भावनाके बल-भरोसेपर तुम माँको कारागारसे मुक्त करोगे ? इसी भावनाको लेकर तुम अपने

स्वामीके सामने जानेका साहस करोगे? क्यों हँसी कराते हो? स्वामीका घर अभी बहुत दूर है।

दूर है मंजिल अभीसे बेकरारी आ गई!

हा हा हा हा हा हा! इसी अंधी भावनाके बलपर तुम वहाँ जानेकी तैयारी कर रहे हो, जहाँ पहुँचनेके लिए पगली मीरा छटपटा रही है।

गगन-मंडलमें सेज पियाकी, केहि बिधि मिलना होय।

क्यों, माँको कारागारसे मुक्त करोगे? खूब किया! तुम्हें तो अभी आपसके लड़ने-झगड़नेसे ही फ़ुरसत नहीं! बहादुरोंका यही तो काम है! अपनी सारी ताक़त आपसके लड़ाई-झगड़ोंमें खर्च कर डालना! घरमें शेर और बाहर बकरी बनकर ही तुम मातृ-भूमिकी सच्ची सेवा कर सकोगे। नित्य नूतन दल बनाओ। बड़ी-बड़ी लंबी-चौड़ी योजनाएं तैयार कर डालो। शानदार सम्मेलन करो। प्रस्ताव भी खूब पास करो। हृदयद्रावी व्याख्यानों और लेखोंद्वारा करुणा और वीरताके स्रोत बहा दो। यह सब यदि तुमसे करते बन गया, तो स्वाधीनता आप ही तुम्हारे द्वारपर आ खड़ी होगी। ये तो हुईं करनेकी बातें, अब न करनेकी सुन लो। सबसे पहले, चाहे कुछ भी हो जाय, मिल-जुलकर काम न करना। किसानों और मज़ूरोंकी दशापर व्याख्यान तो खूब देना, पर कभी उनके झोपड़ोंमें जाकर

उनकी घिनौनी सूरतें न देखना। किसी ऐसे काममें हाथ न डालना, जिसमें जानका जोखिम हो। हां, एक बात और, तुम्हें क़सम है राम-रहीमकी, जो कभी भूलकर भी खद्दर पहनो। खद्दर और देश-सेवामें संबंध ही क्या? यह तो वही बात हुई कि—

कहै कवि कल्यानदास, प्यासा हो तो ताप ले।

गांधी तो हो गया है पागल! पागल न होता तो ऐसी बेतुकी क्यों हाँकता? कहीं चरखे या खद्दरसे स्वराज्य मिल सकता है? अपना भला चाहो तो खद्दर न तो खरीदना, न पहनना! कहाँ तो तुम्हारा यह गुलाबके फूल जैसा बदन और कहाँ वह मोटा, भद्दा और खुरखुरा खद्दर! छिः छिः! ऐसा काम कभी न करना! क्या स्वराज्यके लोभमें आकर अपना गुलबदन छील डालोगे? तुम तो अपने मक्खन-जैसे बदन-पर वही रेशमी तनजेब धारण किये जाओ, जो तुम्हारे ग़रीब भाइयोंके—अरे, भूल गयी, भाइयों नहीं, दुश्मनोंके—ख़ूनसे सात समुद्र पार विदेशमें—फिर भूल गई, विदेश नहीं, तुम्हारे ख़ास स्वदेशमें—तैयार की जाती है। सभा-सम्मेलनोंमें गला फाड़-फाड़-कर गांधीकी जय बोलना तुम्हारा कर्तव्य है। उसकी सनकसे भरी हुई चरखे-खादीकी बातें सुनना और उनपर अमल करना तुम-जैसे समझदारोंका काम नहीं। सच पूछो तो चरखे और

खद्दरसे ही स्वराज्यकी हत्या हुई है। बड़े-बड़े आला दिमाग राजनीतिके धुरन्धर इसी सत्यानासी खद्दरके कारण स्वराज्यके क्षेत्रसे पीछे हट गये हैं। ख़्याल करनेकी बात है कि सुकुमार एवं कोमलाङ्ग नेताओंकी खादी-पहननेसे क्या दशा होती होगी। इसका यह अर्थ नहीं है कि हमारे सुकुमार देश-भक्त युद्ध-प्रिय अथवा रणधीर नहीं हैं। नहीं, नहीं, अवसर आनेपर वे नज़ाकतके पुतले रणक्षेत्रसे पीछे हटनेवाले नहीं। तलवारें और भाले उनके फूल जैसे बदनका बाल भी बाँका नहीं कर सकते; क्योंकि उन हथियारोंकी नोकें खद्दरकी तरह पैनी तो होंगी नहीं! आया कुछ समझमें? इसलिये अपना भला चाहो, तो गांधीके चरखे और खद्दरको दूरसे ही नमस्कार कर लेना!

मुई जीभमें आग भी नहीं लगती। न जाने क्या-क्या आँयँ बाँयँ सायँ बक जाती है। सारे दिन टर्र-टर्र करती रहती है, और सारी रात। पर उस निठुर निर्दयका नाम रटनेसे तो यह टर्र-टर्र फिर भी अच्छी ही है। उसका नाम तो अब भूलकर भी न लूँगी। न, कभी नहीं। उस निठुरने भी कभी मेरा नाम लिया है? फिर मैं ही क्यों उसके नामकी रट लगाती फिरूँ? जी न मानेगा। मान लो, मुँहसे उसका नाम न लिया, पर इतने-से ही क्या हुआ। बदला तो न चुका पाया! अन्तरघटसे तो उस प्यारेका नाम आठ पहर निकलता ही रहेगा। जितना ही

भुलाऊँगी, उतनाही याद आयगा। यह बुरी बला है। क्या करूं, कोई इलाज ही नहीं। पापी प्राण भी नहीं निकलते। उस संगदिलने इन प्राणोंको भी पत्थर कर दिया है। क्यों अब बीचमें ही छोड़कर भागे जाते हो! अरे, तुम्हें देखे कितने दिन बीत गये! बड़ी घबराहट है। क्या करूँ, नाथ!

अब नहिं प्रान रोके रहत।
रहत रोके प्रान नाहिं अब, बिषम वेदन सहत॥
छटपटात अधीर छिन-छिन, धीर नाहिंन गहत।
मनहुँ पंछी पींजरातें उड़न अबहीं चहत॥
नेह-दरस-पियास निसिदिन निबल नैनानि दहत।
ध्यान पथतें हटत नहिं वह, चैन चित नाहिं लहत॥
बिकल बिरह तरंगिनीमें, हाय, कबतें बहत!
गोय मनकी मनहिंमें 'हरि' बिथा नाहिंन कहत॥

यह गये, यह भागे! रोकते बने तो रोक लो, नहीं तो हाथसे गये। इन प्राणपक्षियोंको, प्यारे, अब भी रोक रखो। अब मेरा बस नहीं। लो, ये उड़े जाते हैं। पकड़ लो, पकड़ते बने तो—

औधि पै न आये जो पै, आये तब कहा लाभ,
हौं तौ तजि दई आस, प्यारे नाहिं आवैंगे।
पाछे पछताय, हाय, ऐसौ मति यहां नाथ,
बिरह-उदेग-मेह छाय झर लावैंगे॥

बैठि 'हरि' लोग मेरी प्रीतिकी कहानी तुम्हैं,
ढारि-ढारि नेह-नीर चावसों सुनावैंगे।
दरस-सुहाग-भाग-जागनिके पूरबहीं,
एहो प्रानप्यारे ! प्रान-पंछी उड़ि जावैंगे ॥

सो, इन्हें पींजड़ेमें पकड़कर बन्द कर लो। उपाय मैं बताये देती हूँ —

बिरह-उदेग-आगि लागी तन-काननमें,
जरिहैं जो अंग-बृच्छ, ठौर कित पावैंगे।
प्राननाथ एहो, यातें मानिये हमारी एती,
बिकल अधीर 'हरि' हाथ नाहिं आवैंगे ॥
नेहकौ बिछाय जाल, रूपकौ सुचारु चारो,
न्यारो मधु देहु, जातें लगन लगावैंगे।
लीजै इमि बांधि पद-पंकजके पींजरामें,
नतरु हमारे प्रान-पंछी उड़ि जावैंगे ॥

अरे, कहाँसे कहाँ बह गयी ! ये तो मैंने अनजानमें समस्या-पूर्तियाँ कर डालीं। क्या यहाँ कवि-सम्मेलन हो रहा है ? प्रान-पंछी उड़ि जावैंगे तो उड़ जाने दो। कवित्त पढ़नेकी क्या ज़रूरत है ! तुम भी भाग्यसे भले श्रोता मिले ! सुनते - सुनते ऐसे तन्मय हो जाते हो कि फिर बीचमें कहीं टोकते भी नहीं। अब कराओ याद, क्या कहती थी। हाँ, उस पगले गांधीके चरखेका विषय

था। खैर, चरखा-वरखा भाड़में जाय! तुम्हें चरखा चलाना है, या स्वराज्य लेना है? स्वराज्य लेना हो तो बेतुकी मत हाँको। आओ, अब कुछ सार-भरी बातें करें। मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। एक बातपर बहुत ही ख़ुश हूं। बात यह है कि तुम श्रद्धालु श्रोता हो। पगली-प्रलापका सुनना सहज नहीं। बड़ी भारी श्रद्धाकी ज़रूरत है। तुम तो खूब धैर्य्यके साथ मन लगाकर सुन रहे हो। दुनियामें आज सुनने-समझनेवाले भी बहुत कम रह गये हैं। पागलोंका प्रलाप सभ्य समाज न तो सुनता ही है और न उसपर ध्यान ही देता है। तभी तो दिन-पर-दिन दुर्दशा हो रही है। आजकल अपनी घरू बोलीमें अपने दुख-सुखकी कहानी कहना-सुनना एक घोर पाप समझा जाता है। मातृभाषा असभ्य गंवारोंकी भाषा है न? मातृ-भूमि असभ्य, मातृभाषा असभ्य और अपनी माता भी असभ्य! और सभ्य क्या है? विलायत सभ्य है, विलायती ज़बान सभ्य है और विलायती मां-बाप सभ्य हैं। ठीक, अब आया समझमें! क़सम खुदाकी, जो मज़ा 'डियर फादर', कहनेमें आता है वह कभी 'पूज्य पिताजी' कहनेमें हासिल हो सकता है! मुर्दा ज़बान संसकीरतकी कपालक्रिया तो भारतके सुपूत कभीके कर चुके हैं, अब सड़ीगली हिन्दवीपर धावा बोला जा रहा है! अपनी घरू भाषाको तो गुलाम अपनाते हैं, गुलाम! तुम लोग ठहरे आज़ाद! हिन्दी-विन्दीको तुम लोग बोलना

नहीं माँगता। तुम स्वराज्यवादी उन्हीं मर्दोंकी भाषा बोलते और उसीमें लिखते-पढ़ते हो, जिनके कि साथ तुम्हारा जंग छिड़ा हुआ है! कहो, कैसी बहादुरी और मर्दानगीका काम है! तुम लोगोंमें आज अपनापन कितना अधिक है, इसकी किसीको खबर भी नहीं। भैया, पगलीके कहनेका बुरा न मानना। मुझे तो तुम्हारी बहादुरी और आज़ादीपर रोना आता है। न जाने, तुम्हें क्या हो गया है। पागल कौन है—मैं या तुम?

दई छाँड़ि निज सभ्यता, निज समाज, निज राज।
निज भाषा हू त्यागि तुम, भये पराये आज॥

तुम्हारे भाव और तुम्हारी भाषा—दोनोंपर ही चतुर खिलाड़ियोंने आज अधिकार जमा लिया है। कालिदासके "वागर्थाविवसंप्रक्तौ" का आज तुमने व्यवहारतः खण्डन कर दिया है। धन्य हो, धन्य हो!

अब क्यों फड़फड़ाते हो? जकड़े रहो गुलामीकी बेड़ियोंसे हज़ार जन्मतक। खूब शिक्षा पायी है! तुम अशिक्षित क्या बुरे थे! तुम्हारे इन स्कूलों-कालेजोंपर-बिजली भी नहीं गिरती! अर र र र र! कितने गुलाम इन स्कूल-कालेजोंमें हर साल ढल-ढल कर तैयार होते हैं। गुलाम ढालनेकी क्या ही पेटेन्ट मशीनें हैं। मेरा वश चले तो इन सब ऊँचे-ऊँचे कालेजोंको ढहाकर सुन्दर

चौरस खेत बनवा दूं और जुता जुताकर वहां ज्वार, गेहूं और चने बुवा दूं। दरिद्रनारायणोंकी पेट पूजा तो हो सकेगी। तुम्हारे इन स्कूल-कालेजोंकी शिक्षा-पद्धति है तो सराहनीय, पर पगली को न जाने क्यों पसन्द नहीं पड़ती। कम-से-कम इतिहास तो बड़ा सच्चा पढ़ाया जाता है। आर्य्य लोग जंगली-असभ्य थे; राणाप्रताप हठी था, शिवाजी पहाड़ी डाकू था, हिन्दू राज्य-शासन करना जानते ही न थे, अंग्रेजोंने दया करके भारतवर्षको सभ्य बनाया—आदि बातोंमें कितना अधिक ऐतिहासिक सत्य है, इसका तुम्हें क्या पता ? तुम्हारी शिक्षा तुम्हारा कायाकल्प करनेमें तो कमाल करती है। देखते-देखते तुम कुछ और ही हो जाते हो। तुम्हारे साथ यदि गुरु गोविंदसिंहके लड़कों-ने तालीम पायी होती तो वे जिंदा ही दीवालमें चुने जानेकी बेव-कूफी कभी न कर बैठते। स्वतंत्रताकी वेदीपर जिस किसीने भी अपना बलिदान किया, वह स्कूल-कालेजका सुशिक्षित नहीं था। बलिदान गंवार और अपढ़ किया करते हैं। तुम्हारी शिक्षादीक्षा तुम्हें सारी चिन्ताओंसे मुक्त कर देती है न ! न देशोद्धारकी चिन्ता, न दुनियाकी फिक्र, और न ईश्वर-प्राप्तिकी लालसा। सभी व्यर्थ बातोंसे छुटकारा मिल जाता है। फिर भी पगली तुम्हारी शिक्षा-दीक्षा और संस्कृतिको कोसती रहती है। तभी तो सभ्य समाज मुझपर हँसा करता है। हँसने दो जी, मुझे उसकी क्या परवा।

तुम लोग यदि मेरी भाषामें मेरा प्रलाप न सुनते-समझते, तो मैं तुम्हारे पास थूकने भी न आती। पगली होती हुई भी मैं विदेशी भाषाके गुलामोंसे बहुत बचा करती हूं। उनपर मेरा विश्वास नहीं है। पर तुम लोग कुछ भले हो। तुमने अपनी भाषा अभीतक नहीं छोड़ी। इसीलिये तुम्हें मैं अपना पुराण सुना रही हूं। सो श्रद्धा और प्रेमसे सुने जाओ।

उस दिनवाला एक गीत याद आ गया है। ज़रा गा लूं, तब आगे अपना पुराण सुनाऊं। दादू बाबाका गीत है। कहो तो सुनाऊं। अच्छा, लो सुनो

न निकसे अजहूँ प्रान कठोर।
दरसन बिना बहुत दिन बीते, सुंदर प्रीतम मोर॥
चार पहर चारों जुग बीते, रैन गँवाई भोर।
अवधि गई, अजहूँ नाहिं आये, कहां रहे चितचोर॥
कबहूँ नैन निरखि नहिं देखे, मारग चितवत तोर।
'दादू' ऐसी आतुर बिरहिन, जैसे चंद-चकोर॥

यह भी, भला, कोई गाना है! न स्वर है न ताल। तभी तो मेरे गानेपर लोग हँसते हैं। खैर, हँसते ही तो हैं, रोते तो नहीं, खूब हँसे जाओ। इतना हँसो कि दुनिया बहरी हो जाय। सारा दिन हँसो, सारी रात हँसो। तुम भाग्यवान् भारतीय न हँसोगे तो कौन हँसेगा! सुखी और निर्लज्ज दोही तो संसारमें हँसा करते

हैं । यह तो राम जाने कि तुम सुखी हो या दुखी, पर बेशर्म बेशक हो। निर्लज्जतामें तुम्हें कौन हरा सकता है ? हज़ारों बरसों- से कुट-पिट रहे हो, फिर भी हँसते रहते हो ! धन्य हो, धन्य हो ! पूरे 'सम दुःख-सुख क्षमी' हो। जूतियोंकी मार यदि किसीने फूलोंकी वर्षा मानी है, तो तुम विदेह भारतवासियोंने ही। बलि- हारी ! खाली पेट हँसते हो, और नंगे बदन भी हँसते हो। इधर तुम्हारी माताओं, बहनों और स्त्रियोंकी बेइज्जती की जा रही है, उधर तुम बराबर हँसते चले जाते हो। तुम्हारी दौलत दिन-पर-दिन लुटती चली जाती हैं, पर तुम्हें ज़रा भी परवा नहीं। तुम्हें तो बस, एक हँसनेसे काम है। रोना तो तुम कभीके भूल गये। तुम्हारी आंखमें आज पानी ही नहीं रहा। पानीदार आंख तो तुम कभीके गँवा बैठे। एकाध कमबख्तको छोड़ तुममेंसे आज कौन रोना जानता है। रोया तो अरावलीकी उपत्यकामें प्रताप था। उसकी अश्रु-धाराने सम्राट् अकबरकी मान-मर्य्यादाको बहा दिया था। रोया तो सह्याद्रि-शिखरोंपर शिवाजी था। उसके रोदनने आलमगीरकी तलवारका पानी उतार दिया था। रोया तो खालसाका शेर गोविंदसिंह था। उसके रोनेने सिक्खोंको सिंह बना दिया था। एक दिन बुन्देलखण्डकी भूमिपर छत्रसाल भी रोया था। उसका भी रोना गजबका था। तिलक भी रो उठा था। उसके रोदनने ही गीताका रहस्योद्घाटन

किया है। दास भी रोकर हजारोंको रुला गया। उसके रोनेमें बड़ा ज़ोर था। आज भी एक कोनेमें बैठा गांधी फूट-फूटकर रो रहा है। पर तुम्हें क्या! रोना मूर्खों या पागलोंका काम है, समझदारोंका नहीं। तुम तो खूब हँसे जाओ।

न निकसे अजहूँ प्रान कठोर।

दरसन बिना बहुत दिन बीते, सुंदर प्रीतम मोर॥

हँसो, और हँसो, और भी ज़ोरसे हँसो। हँसते-हँसते कहीँ तुम्हारा पेट न फूट जाय। हाँ, भैया, रोना हमलोग सचमुच भूल गये हैँ। हमारी बहनेँ भी आज रोना भूल गयी हैँ। रोयी तो राम-प्रिया सीता थी। आदिकविका करुण-संभूत महाकाव्य विदेह-तनयाके अश्रु-जलसे ही अभिषिक्त हुआ है। या फिर अभागिनी सावित्री रोयी थी। उस सतीने अपने आँसुओंमें यम-शक्तिको भी डुबो दिया था। कुरुसभामें द्रुपद-नन्दिनी भी उस दिन रोई थी। उसके रोदनने ही तो द्वारकाधीशको वहाँ खीँच लिया था। झाँसीकी वह लक्ष्मीबाई भी उस दिन भारत-माताकी छातीसे चिपटकर रोयी थी। उस चंडिकाकी गौराङ्ग रक्त-पांखिनी तलवारपर उसके आँसुओंका ही पानी चढ़ा था। हमारी एक-दो बहनेँ आज भी कुछ-कुछ रो रही हैं। देखूँ, उनके रोनेसे मेरे निठुर मालिकका सिंहासन कुछ हिलता है या नहीं।

अरे, उस निर्दयको दया कहाँ! वह बड़ा निठुर है। उसके

दरबारमें सुनवायी होनी हँसी-खेल नहीं। यहां कुछ भी हो जाय, उस दरबारके मालिकको कोई परवा नहीं। हज़रत कानोंमें तेल डाले पड़े रहते हैं। वाह, साहब, खूब !

चाहमें कोई मर भी मिटै, तो ख्यालमें कब लाते हो !†
गर्चि जहांमें मसीहा वक्तके तुम कहलाते हो ॥

पगलीकी बकझक सुनते-सुनते ऊब तो नहीं गये ? अभी और बकूँगी, तनिक सुस्ता लूँ। दो घूंट पानी पी लूँ। पानी पी-पी कर रहती हूँ। दूध कहांसे लाऊँ ! दूधका तो नाम ही नाम रह गया है। क्षीरसागर तो अब व्यास बाबाकी पोथियोंमें ही लहरा रहा है। यही बड़ी बात जो पानी मिलता जाता है। दूध दही तो यहां गोपालकृष्णके ही समयतक रहा। हा, प्यारे गोपाल !

गो-धन, गोवर्द्धन-धरन, गोकुलेस, गोपाल !
रँगत-रँगत गो-रकतसों, भई भूमि तुव लाल ॥
चोरि-चोरि चाख्यौ जहां, माखन, गोकुल-राज !
टुक, देखौ गो-रुधिरकी बहति धार तहँ आज ॥*

माता तो आज भी हिन्दू गायको कहते हैं, पर उसका पालन-पोषण उतना भी नहीं करते, जितना कि गोहन्ता मुसलमान और ईसाई करते हैं। गोमाता तो हिन्दुओंकी दृष्टिमें सिर्फ मरनेके बाद वैतरणी पार करनेकी एक नौकामात्र है, इससे

† स्व० प्रतापनारायण मिश्र। * वीर सतसई।

अधिक गायका कोई सामाजिक वा राजनीतिक महत्व नहीं है। एक तो योंही यहां गोवंशका नाश होता चला जा रहा है, तिसपर पश्चिमकी ओरसे साइन्स-असुरने कृपा करके गो-प्रधान भारतपर चढ़ाई कर दी है। साइंस-सेवी आंग्ल जाति अपने बल-पराक्रमसे भारतीयोंको खेती करना सिखायगी। भारतवासी खेती करना नहीं जानते। ये मूर्ख पूज्य बैलोंसे खेत जुताते हैं! कैसी मूर्खता है! तभी तो थोड़ा-सा अनाज पैदा कर सकते हैं। यहां सिर्फ विदेशियोंका पेट भरने लायकही तो अन्न पैदा होता है। अब होगी खेतीमें उन्नति। सिर्फ कुछ करोड़ रुपये कृषिके यंत्रोंके लिये खर्च करने होंगे। एक पंथ दो काज। एक तो यहां पचास गुना अनाज पैदा होगा, दूसरे विलायतके ग़रीब लुहारोंकी तिजोरियां रुपयेसे भर जायंगी। और खेती करना मुफ्तमें आ जायगा। श्रद्धालु भारतवासियो! पुण्य लूट लो, पुण्य। अब तुम्हारे पूज्य बैलोंको कृषियंत्रोंकी दैवी सहायतासे पहले जैसा श्रम न उठाना पड़ेगा, या यों कहो, कि बैलोंकी अब जरूरत ही न रहेगी।

न जाने,तुम दूध और घीका सेवन किसलिये करना चाहते हो। यह बिल्कुल अप्राकृतिक चीजें हैं। गाय, भैंसके घीसे तो नारियलका तेल अच्छा है। दूध तो बड़ा ही हानिकारक पदार्थ है। मैं तो दूधसे गरमागरम चाय या कहवा ज्यादा फायदेमन्द समझती हूँ। दूसरे दूध और घी खानेसे दिमाग़ी ताक़त कम हो

जाती है, या यों कहो, कि रहती ही नहीं। पंजाबी पहलवान या मथुराके चौबे तुमने कभी अक्लमंद देखे हैं? शारीरिक शक्तिकी तुम्हें क्या ज़रूरत है। स्वराज्य तो दिमाग़ी कूवतसे ही ले सकोगे। इसलिये दूध और घीका तो तुम लोगोंको एक दम बायकाट कर देना चाहिये। भाई, मेरे लिये तो आज यह पानी ही दूध, दही या घीका काम दे रहा है, सो अब दो घूंट पानी पीकर उस निठुरकी सूरतका ध्यान करती हूँ। उसकी तसवीर फिर आँखोंमें खिँच आयी। बोलो, तुम उसका चित्र खींच सकते हो? अरे, तुम क्या खीँचोगे!

लिखन बैठ जाकी सबी, गहि गहि गरब गरूर।
भये न केते जगतके, चतुर चितेरे कूर॥

पर मेरे दिलके आईनेमें उस सङ्गदिलकी तसवीर बिना किसी मुसव्वरसे खिँचवाये ही खिंच गयी है। अहा!

दिलके आईनेमें है तसवीरे यार।
जब ज़रा गर्दन झुकायी, देख ली॥

जहांतक हो सकता है पगली अपने वशभर कभी गर्दन नहीं झुकाती, पर, वह 'तसवीरे यार' बड़ी ज़बरदस्त है। मेरी इस ऊंची गर्दनको पकड़कर खुद अपनी तरफ़ झुका लेती है। यहीं तो लाचारी है।

इधर-उधरकी बातें कर-कर इस विश्वासघाती मनको बहुत कुछ बहलाती हूँ, पर वह रहरहकर, पतंगेकी तरह, प्यारे, तेरे उसी प्रेम-ज्योतिको आलिंगन देनेके लिए दौड़ता है। क्या धर्म, क्या समाज और क्या राजनीति—सभीपर तेरी सूरतकी तसवीर खिंची देखती हूँ। धन्य मेरे घटघटमें रमते राम !

लो; अब तुमलोग जाओ। मेरा प्रलाप कहाँतक सुनोगे? उसका कहीँ अन्त नहीँ। जाओ, अपना-अपना काम करो। पगलीके प्रलापपर हँसना हो हँसो, रोना हो रोओ। लो, भागो, भागो, नहीं तो फिर इस डंडेसे खबर लूँगी। भाग जाओ।

छाँड़िये नहिं साईं मंझधार।

बांह छुड़ाये जात कहां तुम, लागिय क्योंकरि पार॥
दिन ढरि गयौ तिमिर झुकि आयौ, सनसनात दिसि चार।
टिमटिमात नहिं दीप दूर लौं, सुनत न कोइ पुकार॥
बहति अथाह अनंत नदी यह, है अति तीछन धार।
निपट झाँझरी नाव हमारी, नाहिं यामें पतवार॥
हा हा, नाथ ! बांह पुनि दीजै, कहा लगावत बार।
'हरि' अब बूड़ि रही तरनी यह, कीजै आय सँभार॥
छाड़िये नहिं साईं ! मँझधार।

* समाप्त *